ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

हिन्दी, गुजराती, मराठी, उड़िया, तेलुगू, कन्नड़, अंग्रेजी व सिंधी भाषाओं में प्रकाशित

वर्ष : २० अंक : ७
भाषा : हिन्दी (निरंतर अंक : २१७)
१ जनवरी २०११ मूल्य : रु. ६-००
पौष-माघ वि.सं. २०६७

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
प्रकाशन स्थल : संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद -३८०००५ (गुजरात).
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, ''सुदर्शन'', मिठाखली अंडरब्रिज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद- ३८०००९ (गुजरात).
सम्पादक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा, श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २२५/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(सभी भाषाएँ)

(१) वार्षिक : रु. ३००/-
(२) द्विवार्षिक : रु. ६००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. १५००/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	द्विवार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	७०	१३५	३२५
अन्य देशों में	US$20	US$40	US$80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अपनी राशि मनीऑर्डर या डिमांड ड्राफ्ट ('ऋषि प्रसाद' के नाम अहमदाबाद में देय) द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

सम्पर्क पता

'ऋषि प्रसाद', संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५ (गुजरात).
फोन नं. : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

विभिन्न टी.वी. चैनलों पर पूज्य बापूजी का सत्संग

A2Z NEWS
रोज सुबह ५-३० व ७-३० बजे तथा रात्रि १०-०० बजे

रोज सुबह ७-०० बजे

रोज सुबह ८-१० बजे (सोम से शनि)
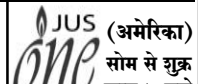
(अमेरिका) सोम से शुक्र शाम ७ बजे, शनि-रवि शाम ७-३० बजे

✲ A2Z चैनल रिलायंस के 'बिग टीवी' पर भी उपलब्ध है। चैनल नं. 425
✲ दिशा चैनल 'डिश टीवी' पर उपलब्ध है। चैनल नं. 757
✲ JUS one चैनल 'डिश टीवी' (अमेरिका) पर उपलब्ध है। चैनल नं. 581

आत्मज्ञान की महिमा

(पूज्य बापूजी की सर्वमंगलकारिणी अमृतवाणी)

आत्मज्ञान एक ऐसी ऊँचाई है कि वहाँ यह नहीं सोचा जाता कि सामनेवाले को इसकी जरूरत है कि नहीं । वह इतना दिव्य अमृत है कि सामनेवाले को जरूरत हो तो भी दो और जरूरत न हो तो उसमें जरूरत जगाकर भी दो, ताकि उसका परम कल्याण हो । समाज को आत्मज्ञान की जरूरत नहीं है ऐसा कहना सही नहीं है । मनुष्यमात्र को ही नहीं प्राणिमात्र को सुख की जरूरत है । जीवमात्र सुबह से शाम तक सुख के लिए चेष्टा करता है । शारीरिक कर्मों की समाप्ति, मानसिक कल्पना तथा समझ की पूर्णाहुति, बौद्धिक ऊँचाई की पराकाष्ठा, चित्त के चिंतन की व्यर्थता तभी समझ में आती है जब मनुष्य को आत्मज्ञान होता है ।

वास्तव में जिन चीजों की इतनी जरूरत नहीं है, उन चीजों में समाज बहा चला जा रहा है । बहते हुए समाज को देखकर ऋषियों का हृदय करुणा से भर आया । वे जानते हैं कि समाज को अगर तत्त्वज्ञान की जरूरत नहीं दिखती तो वह नादान है । तत्त्वज्ञान की जरूरत नहीं है ऐसा नादान मनुष्यों को लगता है लेकिन ऋषियों को लगता है कि मनुष्यों को तत्त्वज्ञान के बिना चलेगा नहीं । ऐसे कई महापुरुष हो गये जिनको परम सत्य का साक्षात्कार हुआ और वे चुप हो गये । उन्होंने सोचा, 'लोगों को ऐसे ज्ञान की जरूरत नहीं है तो क्या बोलना !' कोई-कोई ऐसे महापुरुष हुए जिन्होंने महसूस किया : 'वास्तव में समाज को ज्ञान की जरूरत तो है लेकिन वह नहीं समझता तो उसे समझाना पड़ेगा ।' माँ देखती है कि बच्चा ठीक से भोजन नहीं कर रहा है, ऐसी-वैसी बाजारू चीजें खा रहा है तो सच्ची माँ चिंतित होती है । वह बच्चे को घर का भोजन मिले ऐसा प्रयास करती है । सौतेली माँ कहेगी : 'अगर बच्चे को जरूरत नहीं है तो मैं क्या करूँ ? वह माँगेगा तो दूँगी ।'

हमारे ऋषि समाज की सौतेली माँ नहीं हैं । वे मनुष्य-जाति के सच्चे माता-पिता हैं । ऋषि के प्रसाद को ग्रहण करने का, सुनने का समय लोगों के पास नहीं हो, फिर भी ऋषि लोग चाहते हैं कि किसी भी बहाने लोग आत्मज्ञान सुनने आ जायें । दुर्भाग्यवश तत्त्वज्ञान का अमृत पीने की तड़प नहीं है, तत्त्वज्ञान की गरिमा नादानी के कारण नहीं जानते हैं, आत्मशांति का मूल्य नहीं जानते हैं तो उन्हें यह मूल्य समझना पड़ेगा, तभी उनका कल्याण होगा । आत्मज्ञान कितना दिव्य है, उसका क्या मूल्य है यह तो तुम आध्यात्मिक इतिहास देखो तो पता चलेगा । बड़े-बड़े सम्राटों ने राजपाट छोड़कर, सिर में खाक डालकर, हाथ में काँसा (भिक्षापात्र) लेकर आत्मज्ञानी गुरुओं को रिझाया है । सम्राट तो क्या होते हैं, यहाँ अवतार-भगवान राम जैसे महान आत्मा भी गुरुओं का बड़ा आदर करते हैं !

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा ।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥

(श्री रामचरित. बा.कां. : २०४.४)

भगवान राम सुबह-सुबह गुरु के आश्रम में पहुँच जाते थे और गुरुजी समाधि में होते तो हाथ जोड़कर दूर ही खड़े रह जाते । गुरुजी को विक्षेप नहीं डालते थे । जब वे समाधि से उठते तब साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते थे । कौन ? जिनका नाम जपकर लोग तर जाते हैं वे भगवान राम ! श्रीराम जानते थे कि आध्यात्मिक विद्या का क्या महत्त्व है ! श्रीकृष्ण भी गुरु सांदीपनि की सेवा में

रहे थे । गुरुभाइयों के साथ जंगल में लकड़ियाँ काटने जाते थे । विद्याध्ययन समाप्त होने पर श्रीकृष्ण ने गुरु के चरणों में प्रार्थना की :

''गुरुदेव ! आज्ञा करो । श्रीचरणों में क्या गुरुदक्षिणा दूँ ? क्या सेवा करूँ ?''

गुरुदेव बोले : ''मुझे तो कोई आवश्यकता नहीं है ।''

''गुरुदेव ! आपको तो कोई आवश्यकता नहीं है लेकिन मुझे सेवा करने की आवश्यकता है । मेरा कर्तव्य है ।''

''अच्छा, तो अपनी माँ से पूछ, उसे क्या चाहिए ?''

श्रीकृष्ण ने गुरुपत्नी से पूछा : ''माँ ! मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?''

गुरुपत्नी ने कहा : ''कृष्ण ! तू हमारा सबसे समर्थ विद्यार्थी है । मेरा बेटा यमलोक चला गया है, वह मुझे ला दे ।''

श्रीकृष्ण ने नियति की मर्यादा को तोड़कर यमपुरी से गुरुपुत्र को ला के माँ की गोद में रख दिया ।

'गीता' युद्ध के मैदान में कही गयी है । तब समय का बड़ा अभाव था । कुछ भी अनावश्यक बात करने का समय नहीं था । पूरी गीता में एक भी शब्द अनुपयोगी नहीं मिलेगा । भगवान ने जो कहा है वह बिल्कुल संक्षेप में और साररूप है । दोनों सेनाओं के बीच रथ खड़ा है, ऐसे मौके पर भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

'उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म-तत्त्व को भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे ।' **(गीता : ४.३४)**

जो श्रीकृष्ण के सान्निध्य में रहता है उस अर्जुन को भी श्रीकृष्ण ज्ञानियों से आत्मज्ञान पाने की सलाह दे रहे हैं । इससे आत्मज्ञान की महिमा का पता चलता है । यह आत्मज्ञान मनुष्य-मनुष्य के बीच की दूरी मिटाता है, भय और शोक, ईर्ष्या और उद्वेग की आग से तपे हुए समाज को सुख और शांति, स्नेह और सहानुभूति, सदाचार और संयम, साहस और उत्साह, शौर्य और क्षमा जैसे दिव्य गुण देते हुए हृदय के अज्ञान-अंधकार को मिटाकर जीव को अपने ब्रह्मस्वभाव में जगा देता है । जिस-जिस व्यक्ति ने, समाज ने, राष्ट्र ने तत्त्वज्ञान की उपेक्षा की, तत्त्वज्ञान से विपरीत आचरण किया उसका विनाश हुआ, पतन हुआ । घूस, पलायनवाद, आतंकवाद और कायरता जैसे दुर्गुण उस समाज में फैले । आपस्तम्ब धर्मसूत्र (१.२२.२) में आता है :

आत्मलाभात् न परं विद्यते ।

'आत्मलाभ से बढ़कर कोई लाभ नहीं है ।'

मंद और म्लान जगत को तेजस्वी और कांतिमान आत्मसंयम और आत्मज्ञान के साधन से ही किया जा सकता है । ❐

भारतीय संस्कृति के आधारभूत तथ्य

एक : परमात्मा ।
दो : परमात्मा, प्रकृति ।
दो सूत्र : एकाग्रता, अनासक्ति ।
दो पक्ष : कृष्ण पक्ष, शुक्ल पक्ष ।
तीन गुण : सत्त्व, रज, तम ।
त्रिदेव : ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
त्रिविध नरक-द्वार : काम, क्रोध, लोभ ।
त्रिविध ज्ञान-द्वार : श्रद्धा, तत्परता, इन्द्रिय-संयम।
चार पुरुषार्थ : धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ।
चार वर्ण : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ।
चार युग : सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि ।
चार अवस्थाएँ : जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय ।
चार महावाक्य : अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म ।
साधन चतुष्टय : नित्य-अनित्य वस्तु विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति, मुमुक्षुत्व । (क्रमशः)

तुम्हारा जीवन-रथ उत्तर की ओर प्रयाण करे

- पूज्य बापूजी

(मकर संक्रांति, उत्तरायण : १४ व १५ जनवरी)

छः महीने सूर्य का रथ दक्षिणायन को और छः महीने उत्तरायण को चलता है। मनुष्यों के छः महीने बीतते हैं तब देवताओं की एक रात होती है एवं मनुष्यों के छः महीने बीतते हैं तो देवताओं का एक दिन होता है। उत्तरायण के दिन देवता लोग भी जागते हैं। हम पर उन देवताओं की कृपा बरसे, इस भाव से भी यह पर्व मनाया जाता है। कहते हैं कि इस दिन यज्ञ में दिये गये द्रव्य को ग्रहण करने के लिए वसुंधरा पर देवता अवतरित होते हैं। इसी प्रकाशमय मार्ग से पुण्यात्मा पुरुष शरीर छोड़कर स्वर्गादिक लोकों में प्रवेश करते हैं। इसलिए यह आलोक का अवसर माना गया है। इस उत्तरायण पर्व का इंतजार करनेवाले भीष्म पितामह ने उत्तरायण शुरू होने के बाद ही अपनी देह त्यागना पसंद किया था। विश्व का कोई योद्धा शर-शय्या पर अट्ठावन दिन तो क्या अट्ठावन घंटे भी संकल्प के बल से जी के नहीं दिखा पाया। वह काम भारत के भीष्म पितामह ने करके दिखाया।

धर्मशास्त्रों के अनुसार इस दिन दान-पुण्य, जप तथा धार्मिक अनुष्ठानों का अत्यंत महत्त्व है। इस अवसर पर दिया हुआ दान पुनर्जन्म होने पर सौ गुना होकर प्राप्त होता है।

यह प्राकृतिक उत्सव है, प्रकृति से तालमेल करानेवाला उत्सव है। दक्षिण भारत में तमिल वर्ष की शुरुआत इसी दिन से होती है। वहाँ यह पर्व 'थई पोंगल' के नाम से जाना जाता है। सिंधी लोग इस पर्व को 'तिरमौरी' कहते हैं, हिन्दी लोग 'मकर संक्रांति' कहते हैं एवं गुजरात में यह पर्व 'उत्तरायण' के नाम से जाना जाता है।

यह दिवस विशेष पुण्य अर्जित करने का दिवस है। इस दिन शिवजी ने अपने साधकों पर, ऋषियों पर विशेष कृपा की थी।

इस दिन भगवान सूर्यनारायण का ध्यान करना चाहिए और उनसे प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हमें क्रोध से, काम-विकार से, चिंताओं से मुक्त करके आत्मशांति पाने में, गुरु की कृपा पचाने में मदद करें।' इस दिन सूर्यनारायण के नामों का जप, उन्हें अर्घ्य-अर्पण और विशिष्ट मंत्र के द्वारा उनका स्तवन किया जाय तो सारे अनिष्ट नष्ट हो जायेंगे और वर्ष भर के पुण्यलाभ प्राप्त होंगे।

ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः । इस मंत्र से सूर्यनारायण की वंदना कर लेना, उनका चिंतन करके प्रणाम कर लेना। इससे सूर्यनारायण प्रसन्न होंगे, निरोगता देंगे और अनिष्ट से भी रक्षा करेंगे।

उत्तरायण के दिन भगवान सूर्यनारायण के इन नामों का जप विशेष हितकारी है : **ॐ मित्राय नमः । ॐ रवये नमः । ॐ सूर्याय नमः । ॐ भानवे नमः । ॐ खगाय नमः । ॐ पूष्णे नमः । ॐ हिरण्यगर्भाय नमः । ॐ मरीचये नमः । ॐ आदित्याय नमः । ॐ सवित्रे नमः । ॐ अर्काय नमः । ॐ भास्कराय नमः । ॐ सवितृ सूर्यनारायणाय नमः ।**

ब्रह्मचर्य से बुद्धिबल बहुत बढ़ता है। जिनको ब्रह्मचर्य रखना हो, संयमी जीवन जीना हो, वे उत्तरायण के दिन भगवान सूर्यनारायण का सुमिरन करें, प्रार्थना करें जिससे ब्रह्मचर्य-व्रत में सफल हों और बुद्धि में बल बढ़े।

ॐ सूर्याय नमः... ॐ शंकराय नमः... ॐ गं गणपतये नमः... ॐ हनुमते नमः... ॐ भीष्माय नमः... ॐ अर्यमायै नमः...

इस दिन किये गये सत्कर्म विशेष फल देते हैं। इस दिन भगवान शिव को तिल-चावल अर्पण करने का अथवा तिल-चावल से अर्घ्य देने का भी विधान है। इस पर्व पर तिल का विशेष महत्त्व माना गया है। तिल का उबटन, तिलमिश्रित जल से स्नान, तिलमिश्रित जल का पान, तिल-हवन, तिलमिश्रित भोजन व तिल-दान, ये सभी पापनाशक प्रयोग हैं। इसलिए इस दिन तिल, गुड़ तथा चीनी मिले लड्डू खाने तथा दान देने का अपार महत्त्व है। तिल के लड्डू खाने से मधुरता एवं स्निग्धता प्राप्त होती है एवं शरीर पुष्ट होता है। शीतकाल में इसका सेवन लाभप्रद है।

यह तो हुआ लौकिक रूप से उत्तरायण अथवा संक्रांति मनाना किंतु मकर संक्रांति का आध्यात्मिक तात्पर्य है - जीवन में सम्यक् क्रांति। अपने चित्त को विषय-विकारों से हटाकर निर्विकारी नारायण में लगाने का, सम्यक् क्रांति का संकल्प करने का यह दिन है। अपने जीवन को परमात्म-ध्यान, परमात्म-ज्ञान एवं परमात्मप्राप्ति की ओर ले जाने का संकल्प करने का बढ़िया-से-बढ़िया जो दिन है वह मकर संक्रांति का दिन है।

मानव सदा सुख का प्यासा रहा है। उसे सम्यक् सुख नहीं मिलता तो अपने को असम्यक् सुख में खपा-खपाकर चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है। अतः अपने जीवन में सम्यक् सुख, वास्तविक सुख पाने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए।

आत्मसुखात् न परं विद्यते।
आत्मज्ञानात् न परं विद्यते।
आत्मलाभात् न परं विद्यते।

वास्तविक सुख क्या है ? आत्मसुख। अतः आत्मसुख पाने के लिए कटिबद्ध होने का दिवस ही है मकर संक्रांति। यह पर्व सिखाता है कि हमारे जीवन में भी सम्यक् क्रांति आये। हमारा जीवन निर्भयता व प्रेम से परिपूर्ण हो। तिल-गुड़ का आदान-प्रदान परस्पर प्रेमवृद्धि का ही द्योतक है।

संक्रांति के दिन दान का विशेष महत्त्व है। अतः जितना सम्भव हो सके उतना किसी गरीब को अन्नदान करें। तिल के लड्डू भी दान किये जाते हैं। आज के दिन लोगों में सत्साहित्य के दान का भी सुअवसर प्राप्त किया जा सकता है। तुम यह न कर सको तो भी कोई हर्ज नहीं किंतु हरिनाम का रस तो जरूर पीना-पिलाना। अच्छे-में-अच्छा तो परमात्मा है, उसका नाम लेते-लेते यदि अपने अहं को सद्गुरु के चरणों में, संतों के चरणों में अर्पित कर दो तो फायदा-ही-फायदा है और अहंदान से बढ़कर तो कोई दान नहीं। लौकिक दान के साथ अगर अपना-आपा ही संतों के चरणों में, सद्गुरु के चरणों में दान कर दिया जाय तो फिर चौरासी का चक्कर सदा के लिए मिट जाय।

संक्रांति के दिन सूर्य का रथ उत्तर की ओर प्रयाण करता है। वैसे ही तुम भी इस मकर संक्रांति के पर्व पर संकल्प कर लो कि अब हम अपने जीवन को उत्तर की ओर अर्थात् उत्थान की ओर ले जायेंगे। अपने विचारों को उत्थान की तरफ मोड़ेंगे। यदि ऐसा कर सको तो यह दिन तुम्हारे लिए परम मांगलिक दिन हो जायेगा। पहले के जमाने में लोग इस दिन अपने तुच्छ जीवन को बदलकर महान बनने का संकल्प करते थे।

हे साधक! तू भी संकल्प कर कि 'अपने जीवन में सम्यक् क्रांति - संक्रांति लाऊँगा। अपनी तुच्छ, गंदी आदतों को कुचल दूँगा और दिव्य जीवन बिताऊँगा। प्रतिदिन जप-ध्यान करूँगा, स्वाध्याय करूँगा और अपने जीवन को महान बनाकर ही रहूँगा। त्रिबंधसहित ॐकार का गुंजन करते हुए किये हुए दृढ़ संकल्प और प्रार्थना फलित होती है। प्राणिमात्र के जो परम हितैषी हैं उन परमात्मा की लीला में प्रसन्न रहूँगा। चाहे मान हो चाहे अपमान, चाहे सुख मिले चाहे दुःख किंतु सबके पीछे देनेवाले करुणामय हाथों को ही देखूँगा। प्रत्येक परिस्थिति में सम रहकर अपने जीवन को तेजस्वी-ओजस्वी एवं दिव्य बनाने का प्रयास अवश्य करूँगा।' ❐

कृतज्ञता

एक निर्धन व्यक्ति था । नौकरी की तलाश में वह मुंबई पहुँचा । और तो कोई नौकरी मिली नहीं, एक सेठ के यहाँ झाड़ू देने पर नौकर हो गया । वह प्रतिदिन दुकान में झाड़ू लगाता और जब भी खाली समय मिलता तो कोई-न-कोई किताब लेकर बैठ जाता । थोड़ा पढ़ा-लिखा तो था ही । उसकी लिखावट बहुत सुंदर थी । सेठ ने उसे चिट्ठियाँ लिखने का काम दे दिया । चिट्ठियाँ लिखते-लिखते उसमें हिसाब-किताब भी आता तो उसका ब्योरा भी वह बड़े सुंदर ढंग से रखता । यह देखकर सेठ ने उसे मुनीम बना दिया । मुनीम बनने के पश्चात् वह सेठ का प्रत्येक कार्य बड़ी कुशलता से करता था ।

कुछ समय पश्चात् सेठ ने उसकी कार्यकुशलता से प्रसन्न होकर उसे अपने सभी मुनीमों के ऊपर मुख्य मुनीम, बड़ा मुनीम बना दिया । अब दूसरे मुनीम उससे जलने लगे । दूसरी बात तो उन्हें सूझी नहीं, सोचा, 'सेठ के कान भरेंगे तो इसका पद छिन जायेगा ।' परंतु कान भरने के लिए भी कोई बात नहीं थी । मुख्य मुनीम सेठ के मकान में रहता था । दो कमरे थे, जिसमें एक कमरा बंद रहता था । दुकान पर आने से पहले मुख्य मुनीम उस कमरे में जाता और उसे अंदर से बंद कर लेता था । कुछ समय बाद बाहर आकर कमरा बंद करके दुकान पर जाता था । यह बात अन्य मुनीमों के हाथ लग गयी और उन्होंने सेठ के कान भरने शुरू किये : ''सेठजी ! दुकान पर आने से पहले मुख्य मुनीम एक बंद कमरे में जाता है और वहाँ दुकान से चुराये रुपये गिनती करता है ।''

सेठ ने पहले तो उनकी बात पर विश्वास नहीं किया पर एक दिन जब मुख्य मुनीम उस कमरे में गया हुआ था तो दूसरे मुनीमों ने जाकर सेठ से कहा : ''चलो सेठजी ! वह बेईमान मुनीम इस समय अपने चुराये रुपये गिन रहा है । इस समय वह रुपयों सहित रँगे हाथ पकड़ा जायेगा ।''

सेठ भी तेजी से पहुँचा । देखा तो कमरा सचमुच बंद है । सेठ ने दरवाजा खटखटाकर कहा : ''कौन है अंदर ? दरवाजा खोलो !''

मुख्य मुनीम ने कहा : ''मैं हूँ, सेठजी !''

सेठ ने कहा : ''अंदर क्या कर रहे हो ? जल्दी दरवाजा खोलो ।''

मुनीम बोला : ''थोड़ी देर ठहरिये, अभी खोलता हूँ ।''

सेठ को गुस्सा आ गया, वह बोला : ''नहीं, अभी, इसी वक्त दरवाजा खोलो । नहीं तो दरवाजा तोड़ दिया जायेगा ।''

मुनीम ने दरवाजा खोल दिया । सेठ व दूसरे लोग कमरे में प्रविष्ट हुए । देखा तो वहाँ पर एक साधारण बक्से के सिवा और कुछ भी नहीं है, सारा कमरा खाली पड़ा है ।

सेठ ने पूछा : ''इस बक्से में क्या है ?''

मुनीम जल्दी से संदूक पर बैठ गया और हाथ जोड़कर बोला : ''मालिक ! यह मत पूछो, बक्सा बंद ही रहने दो ।''

जलनेवाले लोगों ने कहा : ''सेठजी ! इसीमें तो रुपये हैं, इसीलिए तो खोलने नहीं देता !''

सेठ : ''क्या है इसमें ? खोलो, हम देखेंगे ।''

मुख्य मुनीम ने संदूक पर बैठे-बैठे ही कहा : ''इसे न खुलवाइये, इसमें आपके काम की कोई वस्तु नहीं है ।''

सेठ : ''हट जाओ सामने से ! हम इसे अवश्य देखेंगे।'' मुनीम की आँखों में आँसू आ गये। वह धीरे से उठा और एक तरफ हो गया। सेठ ने अपने हाथ से संदूक खोला। अंदर देखा और आश्चर्यचकित होकर पूछा : ''अरे ! यह क्या है ?''

उस संदूक में थी एक फटी धोती, एक मैला कुर्ता और एक जोड़ी पुराना टूटा हुआ जूता। सभीने उन वस्तुओं को देखा पर कोई भी इसका मतलब नहीं समझ पाया।

मुख्य मुनीम ने सेठ के आगे हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर कहा : ''मालिक ! ये वही कपड़े हैं जिन्हें पहनकर मैं कई साल पहले इस नगर में आया था। आपने कृपा करके मुझे झाड़ू देने की नौकरी दी थी। आपकी उस कृपा के कारण मैं आज मुख्य मुनीम बना हूँ। आपकी उस कृपा को मैं भूल न जाऊँ, मेरे हृदय में कभी यह अभिमान न आ जाय कि 'मैं कुछ हूँ।' इसलिए रोज सुबह दुकान पर जाने से पहले इन वस्तुओं को देखता हूँ और प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि ''प्रभु ! मुझे अभिमान से बचाये रखना, जागतिक लालसाओं से बचाये रखना। नश्वर चीजों को पाकर बड़ा बनने के धर्म को पनपने न देना। वास्तविक बड़े तेरे स्वभाव में मेरे 'अहं' को विलय करके मुझे अपने सोऽहं स्वभाव में, उस ब्रह्मानंद में, जिसमें जागने के लिए मनुष्य-जन्म मिला है, जगा देना।

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर, कार्य रहे ना शेष।
मोह कभी न ठग सके, इच्छा नहीं लवलेश॥

कहीं उलझ न जाऊँ तेरी माया में, आकर्षित न हो जाऊँ... तू रक्षा करना। माया के स्मरणमात्र से भवबंधन में फिसलाहट आती है और तेरे स्मरणमात्र से भवबंधन से मुक्ति मिल जाती है। हे सेठों-के-सेठ ! हे गरीबनवाज ! हे सर्व के परम सुहृद !...'' - ऐसा कहते-कहते वह मुनीम परमात्म-विश्रांतियोग में चला गया, जिसके सब हैं उसीका हो गया। ईर्ष्याग्रस्त दूसरे मुनीम और सेठ उसकी असली उद्देश्य में तत्परता देखकर आश्चर्य... आश्चर्य... आश्चर्य... पावन हो गये।

सेठ की आँखों में प्रेम के आँसू आ गये। उसने आगे बढ़कर मुनीम को हृदय से लगा लिया और कहने लगा : ''धन्य हो ! तुम्हारे जैसा मुनीम पाकर मैं भी धन्य हो गया ! सभी ऐसी भावना रखें तो सारी दुनिया ही नंदनवन बन जाय।''

उस दिन से सेठ ने मुख्य मुनीम को अपनी दुकान का हिस्सेदार बना लिया।

उस परम कृपालु परमात्मा ने हमें यह मानव-तन दिया है। बल, बुद्धि, विद्या सभी कुछ उस प्रभु का ही तो दिया हुआ है। हम इसका अभिमान क्यों करें ! इस नश्वर तन, मिटनेवाली योग्यताओं, परिवर्तनशील वस्तुओं का उपयोग उस प्रभु की सेवा में करें, उसको पहचानने के लिए करें, प्रभु में मिटने-मिलने में लगायें।

हे हरि !... हे प्रभु !... हे हरि !... हे नाथ ! ... ॐ प्रभुजी... ॐ प्यारेजी... ॐ मेरेजी... ॐ सदा साथी... ॐ... ॐ... ॐ शांति... ॐ वासुदेव...ॐ ॐ विश्रांति... आप भी विश्रांतियोग में प्रवेश पाते जाइये लाला ! लालियाँ !... परम मंगलमय प्रभु में शांत होते जाइये। विश्रांतियोग का अमृतपान करने के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है लाले-लालियाँ ! ॐ आनंद... ॐ माधुर्य...

मधु क्षरन्ति सिन्धवः।

(ऋग्वेद : १.९०.६)

ऐसे व्यक्ति के लिए नदियाँ मधु-वर्षण करती हैं।

एक झाड़ू लगानेवाला लाचार-मोहताज व्यक्ति महापुरुष हो सकता है ! उस भगवान की स्मृति कैसी सुखदायी है, कैसी उन्नतिदायी है !

सेठ उसे गुरु मानने लगा, मुनीमों का वैर और ईर्ष्या प्रेम और श्रद्धा में बदल गये और तुम्हारा-हमारा भी उसके प्रति **(शेष पृष्ठ १० पर)**

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

'भगवान सूर्यनारायण तेज रश्मियों से अंधकार मिटाते हैं । हे सूर्यदेव ! मेरे जीवन में तेजस्विता आये, तत्परता आये ।' - ऐसा सात बार चिंतन करके रोज सूर्य को अर्घ्य देने से आपका जीवन तेजस्वी होगा, तत्पर होगा । आपमें तप की वृद्धि होगी ।

हमारे तन-मन में जो कुछ भी बल, ओज है, वह सीधे-अनसीधे सूर्यनारायण की ही कृपा से है । तो सूर्य के तेज को हम अपने में और अवशोषित करेंगे :

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

'तमिस्रा (अंधकार) से दूर श्रेष्ठतम ज्योति को देखते हुए हम ज्योतिस्वरूप और देवों में उत्कृष्टतम ज्योति (सूर्य/परमात्मा) को प्राप्त हों ।' **(ऋग्वेद : १.५०.१०)**

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

'ये ज्योतिर्मयी रश्मियाँ सम्पूर्ण प्राणियों के ज्ञाता सूर्यदेव को एवं समस्त विश्व को दृष्टि प्रदान करने के लिए विशेषरूप से प्रकाशित होती हैं ।' **(ऋग्वेद : १.५०.१)**

इन दोनों मंत्रों के द्वारा सूर्यनारायण को सात अंजलि जल देने का नियम अगर आप ठान लेंगे तो आपके जीवन में आनेवाला छिछोरापन, अहं, भड़कीला स्वभाव अथवा साधना की ऊँचाई से गिरानेवाली गंदी आदतें- ये सब छोड़ने की आपमें क्षमता आ जायेगी । लोटे में जल ले लो, उसमें से अंजलि भर-भर के सात बार सूर्यदेव को जल अर्पण कर दिया बस ! ऐसा करनेवाला व्यक्ति अद्भुत ज्ञान-प्रकाश का धनी बनता है। इनसे मानसिक दुःखों का तो नाश होता ही है, शारीरिक दुःखों का अंत करने में भी ये मंत्र सक्षम हैं ।

वैदिक मंत्रों का उच्चारण करने में कठिनाई होती हो तो लौकिक भाषा में केवल इनके अर्थ का चिंतन या उच्चारण कर सकते हैं ।

बुद्धि के अधिष्ठाता देव सूर्यनारायण हैं। अतः यह प्रयोग बुद्धिवर्धक भी होगा और सामर्थ्य को पचानेवाला, आवेशों के सिर पर पैर रखनेवाला सद्दृष्टिकोण भी इससे मिलेगा । ऋग्वेद के ये मंत्र बच्चों के लिए तो वरदान होंगे । ❒

(पृष्ठ ९ से 'कृतज्ञता' का शेष)

आदर नहीं हो रहा है क्या !

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।

हम यह मान लें कि 'यह सब कुछ तो प्रभुकृपा से ही मिला है और प्रभु का ही है। मेरे तो बस एकमात्र प्रभु हैं ।' तो वे सेठों-के-सेठ प्रभु हमें अपने स्वरूप में मिला लेंगे, अपने स्वभाव में जगा देंगे ।

जब तक 'मैं'पन बना है, तब तक परमात्मा दूर हैं । जब तक 'मैं'पन नहीं मिटेगा, तब तक हमारी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती । जब तक बीज का अस्तित्व नहीं मिटेगा, तब तक वह वृक्ष का आकार नहीं ले सकता है । बीज अपना आपा मिटायेगा तभी वृक्ष बन पायेगा । इसी प्रकार जीव भी अपना अहंकार मिटायेगा तभी शिवस्वरूप हो पायेगा ।

मिटा दे अपनी हस्ती को,
अगर कुछ मरतबा चाहे ।

ॐ ॐ परमेश्वराय नमः... खोते जाओ... उसीके होते जाओ... कुछ कठिन है क्या ! ❒

अभय मंत्र : भगवन्नाम

गांधीजी ने अपने एक वक्तव्य में रुँधे हुए कंठ से इस बात का जिक्र किया कि बचपन में वे बहुत डरपोक थे और भूत से बहुत डरा करते थे। उन दिनों उनकी धाय ने उनका डर भगाने के लिए उन्हें रामनाम का मंत्र बताया था। उन्होंने कहा :

''रंभा (धाय माँ) मुझसे कहा करती थी कि 'जब डर लगे, तब राम का नाम लिया करो। वह तुम्हारी रक्षा करेगा।' उस दिन से भगवान का नाम सब तरह के डरों के लिए मेरा अचूक सहारा बन गया है।''

भगवन्नाम के आश्रय ने गांधीजी को तो निर्भय बना ही दिया, गांधीजी से प्रेरणा पाकर लाखों देशवासी साहस और निर्भयता के धनी बन गये और देश की आजादी के लिए, अस्मिता के लिए उन्होंने ऐसे-ऐसे साहसभरे कदम उठाये कि इतिहास में उनका नाम अमर हो गया।

जानकीदास मेहरा नाम का एक नवयुवक था। बड़े परिश्रम के बाद सन् १९४६ में ज्यूरिख (स्विट्जरलैंड) में होनेवाले अंतर्राष्ट्रीय खेल के लिए वह चुना गया। उसकी खुशी का ठिकाना नहीं था। उसके चयन का समाचार अखबारों में छपा। गांधीजी ने भी वह खबर पढ़ी और उन्हें बहुत खुशी हुई। उन्हें यकीन हुआ कि खेलों में भारत का भविष्य उज्ज्वल है।

गांधीजी ने अपनी साप्ताहिक पत्रिका 'हरिजन' में जानकीदास के चयन की खबर प्रकाशित करवायी और विजय के लिए अपनी शुभकामनाएँ दीं। इस समाचार को पा के जानकीदास हर्ष से नाच उठा। उसने न जाने कितनी बार गांधीजी के उस लेख को पढ़ा होगा। एक दिन वह गांधीजी से मिलने गया। गांधीजी ने कहा : ''मुझे पूरा विश्वास है कि तुम भारत का नाम ऊँचा करोगे लेकिन एक बात याद रखना कि तुम भारतवासी हो और भारत के झंडे के अलावा किसी और झंडे के नीचे खेल में भाग नहीं लोगे।''

जानकीदास ने पूछा : ''भला वह कैसे ?''

''तुम अपना झंडा अपनी कमीज में छिपाकर ले जाना और जैसे ही मौका मिले 'यूनियन जैक' की रस्सी काटकर अपने देश का झंडा फहरा देना।''

उसने डरते हुए कहा : ''बापू ! मैं यह कैसे कर पाऊँगा ?''

''मैं तुम्हें इतना डरपोक नहीं समझता था। जानकीदास ! अगर तुम आनेवाले इतिहास में अपना नाम अमर देखना चाहते हो तो तुम झंडा भी फहराओगे और अपने देश के लिए मरने को भी तैयार रहोगे।''

गांधीजी की बात सुनकर उसका स्वाभिमान और साहस जाग उठा। वह पूरे उत्साह से ज्यूरिख गया। खेल के मैदान में उसने बिल्कुल वैसा ही किया जैसा गांधीजी ने उसे समझाया था। मैदान में उपस्थित भारी भीड़ ने आश्चर्य से वह नजारा देखा जब 'यूनियन जैक' नीचे उतरा और उसकी जगह भारत का झंडा हवा में लहराने लगा। यह जानकीदास की विजय का क्षण था। ज्यूरिख ने जानकीदास को सदा के लिए इतिहास में अमर कर दिया। ❐

शक्ति का मूल : ब्रह्मचर्य

– चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

शक्तिशाली कहलानेवाले कुछ राष्ट्रों की शक्ति कसौटी के मौके पर वीर्यहीन साबित होती है। उन देशों की संस्कृति की यह एक शोकांतिका ही मानी जायेगी। इसका मूल कारण क्या है ?

युद्ध में मनुष्य के साहस का जितना महत्त्व है, उतना शस्त्रों के ढेर का नहीं है। ब्रह्मचर्य से व्यक्ति की आत्मशक्ति को पोषण मिलता है। व्यक्तियों का जीवन जब केवल काम-वासना के, सम्पत्ति जुटाने के या दोनों के चिंतन में व्यतीत होता है, तब ब्रह्मचर्य के सिद्धांत पर प्रहार होता है। जब ब्रह्मचर्य की उपेक्षा की जाती है, तब मनुष्य की आत्मशक्ति क्षीण होती है और उसकी सत्ता और सम्पत्ति शक्तिहीन बनती हैं। कारण कुछ भी हो - चाहे अश्लील साहित्य हो, चलचित्र हों या और कुछ, जिम्मेदार कोई भी हो - कलाकार हो या इन सब कामों का नेता, प्रकृति तो अपना काम करती है। जब राष्ट्र के युवक-युवतियाँ ब्रह्मचर्य को छोड़ देते हैं और अपने को काम-वासना में खो देते हैं, शिक्षा को सम्पत्ति का शिकार करने का साधन बना लेते हैं, सम्पत्ति व काम-वासना के पीछे अपनी बुद्धिमत्ता और ओजस्विता को लुटा देते हैं, तब वह राष्ट्र अस्त्र-शस्त्रों से कितना भी सुसज्जित हो पर अपना प्रभाव कायम नहीं रख सकता। उसके सारे क्रियाकलाप भ्रांतिमात्र साबित होते हैं। मजबूत आधार के बिना बनाया हुआ किला बालू का किला साबित होता है।

यह समस्या सभी राष्ट्रों के सामने है। लोगों की आत्मशक्ति पुनरुज्जीवित करनी होगी। अन्यथा कितनी भी शस्त्र-सामग्री उधार ली जाय या कर्जा लेकर खड़े किये गये कारखानों के द्वारा तैयार की जाय, सब बेकार साबित होगी। मनुष्य के आत्मबल की जरूरत केवल धर्मयुद्ध में नहीं बल्कि सभी प्रकार के न्यायोचित शौर्य में भी है। सम्पत्ति और सत्ता की नहीं, ब्रह्मचर्य और उससे विकसित मनोबल की विजय होती है।

ब्रह्मचर्य को छोड़ना यानी मानव-सभ्यता से पशु-जीवन की ओर मुड़ना। संयम के पालन से मस्तिष्क और हृदय शक्तिशाली बनते हैं। विषय-सेवन से बौद्धिक शक्ति और आत्मशक्ति नष्ट हो जाती है।

केवल दैहिक भोग का संयम पर्याप्त नहीं है। जब मन में भोग का चिंतन चलता है, जब वासना की आग अंदर से जलाती है, तब चित्तशक्ति क्षीण होती जाती है। विषय-सेवन और वासना का त्याग यानी ब्रह्मचर्य।

इसके लिए 'गीता' उपाय सुझाती है :

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

'इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करनेवाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं परंतु उनमें रहनेवाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुष की तो आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है।' **(गीता : २.५९)**

इसी प्रकार तमिल ग्रंथ तिरुक्कुरल में लिखा है : 'बहुतेरी आसक्तियों से बचने के लिए उस एक पुरुषोत्तम की आसक्ति का आलम्बन करो।'

शास्त्रों के सिद्धांतों को अमल में लाने के लिए हम जागृत हो जायें और संतपुरुषों के अनुग्रह के लिए प्रार्थना करें, ताकि हमें पर्याप्त बल मिले। ❐

गुरु-शिष्य संबंध : जीवन का महानतम संबंध

– स्वामी विवेकानंद

शिष्य को अपने गुरु में विश्वास होना चाहिए । गुरु के साथ जो संबंध है, वह जीवन में महानतम है । जीवन में मेरे प्रियतम और निकटतम संबंधी मेरे गुरु हैं, उसके बाद मेरी माता, फिर मेरे पिता । मेरा प्रथम आदर गुरु के लिए है । यदि मेरे पिता कहें 'यह करो' और मेरे गुरु कहें 'इसे मत करो' तो मैं वह नहीं करूँगा । गुरु मेरे जीवात्मा को मुक्त करते हैं । पिता और माता मुझे यह शरीर देते हैं पर गुरु मुझे आत्मा में नया जन्म देते हैं ।

हम भाषण सुनते हैं और पुस्तकें पढ़ते हैं, परमात्मा और जीवात्मा, धर्म और मुक्ति के बारे में विवाद और तर्क करते हैं । यह आध्यात्मिकता नहीं है क्योंकि **आध्यात्मिकता पुस्तकों में, सिद्धांतों में अथवा दर्शनों में निवास नहीं करती । यह विद्वत्ता और तर्क में नहीं वरन् वास्तविक अंतःविकास में होती है । तोते भी बातों को याद कर सकते हैं और उन्हें दोहरा सकते हैं । यदि तुम विद्वान हो जाते हो तो उससे क्या ? गधे पूरा पुस्तकालय ढोते फिर सकते हैं ।** इसलिए जब वास्तविक प्रकाश आयेगा तो पुस्तकों की यह विद्वत्ता किताबी विद्वत्ता नहीं रहेगी । वह मनुष्य, जो अपना नाम भी नहीं लिख सकता, पूर्णतया धार्मिक हो सकता है और वह मनुष्य जिसके मस्तिष्क में संसार के सब पुस्तकालय भरे हों, वैसा होने में असफल रह सकता है । विद्वत्ता आध्यात्मिक प्रगति की शर्त नहीं है ।

गुरु का स्पर्श, आध्यात्मिक शक्ति का संचरण तुम्हारे हृदय में जान फूँक देगा । तब विकास आरम्भ होगा । तुम आगे, और आगे बढ़ते जाते हो ।

गुरु ऐसा मनुष्य होना चाहिए, जिसने जान लिया है, दैवी सत्य को वास्तव में अनुभव कर लिया है और अपने को आत्मा के रूप में देख लिया है । मेरे समान एक वाचाल मूर्ख बातें बहुत बना सकता है पर गुरु नहीं हो सकता ।

मैंने सब धर्मग्रंथ पढ़े हैं, वे अद्‌भुत हैं पर जीवंत शक्ति तुमको पुस्तकों में नहीं मिल सकती । वह शक्ति, जो एक क्षण में जीवन को परिवर्तित कर दे, केवल उन जीवंत प्रकाशवान आत्माओं से ही प्राप्त हो सकती है जो समय-समय पर हमारे बीच में प्रकट होते रहते हैं ।

शिष्य को गुरु की पूजा स्वयं ईश्वर के समान करनी चाहिए । जब तक मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार स्वयं ही न कर ले, वह अधिक-से-अधिक सजीव ईश्वर को, मनुष्य के रूप में ईश्वर को जान सकता है, इसके अतिरिक्त वह ईश्वर को कैसे जानेगा ? गुरु ईश्वर हैं, उससे तनिक भी कम नहीं । गुरु वह आभामय चेहरा है, जिसे ईश्वर हम तक पहुँचने के लिए धारण करता है । जब हम एकटक उसे निहारते हैं तो धीरे-धीरे ईश्वर (परमात्मा) प्रकट हो जाता है ।

मैं गुरु को नमस्कार करता हूँ, जो दैवी आनंद की मूर्ति हैं, उच्चतम ज्ञान के विग्रह हैं और महानतम दैवी आनंद के दाता हैं, जो शुद्ध, पूर्ण, अद्वितीय, सनातन, सब सुख-दुःखों से परे, सर्वगुणातीत और सर्वोच्च हैं । वास्तव में गुरु ऐसे होते हैं । इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि शिष्य उन्हें ईश्वर समझता है और उनमें विश्वास रखता है, श्रद्धा रखता है, उनकी आज्ञा पालता है और बिना शंका किये उनके पीछे चलता है । गुरु और शिष्य के बीच का संबंध ऐसा ही है । **(स्वामी विवेकानंद साहित्य, खण्ड -३, पृष्ठ : १९५-२०० से संकलित)** ❑

संसार की पोल

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक आदमी रात्रि के समय गिरनार के जंगल से जा रहा था। चाँदनी रात थी। मार्ग में एक भालू मिल गया। भालू ने उस पर हमला कर दिया। भालू दो पैरों पर खड़ा होकर मुँह पर पंजे मारता है। वह आदमी जानता था कि जब भालू मारने को आये तो उसके पंजे पकड़ लेने चाहिए, इसलिए उसने भालू के पंजे पकड़ लिये। उस आदमी के सिर पर एक गठरी थी, जिसमें चाँदी के रुपये थे। वह चाँदी के रुपयों का जमाना था। वह आदमी २-४ महीने कहीं कामकाज करके अपने गाँव को जा रहा था। भालू ने पंजे मारे तो वे सीधे गठरी पर पड़े, जिससे गठरी में से रुपये गिरने लगे। वह आदमी भालू के पंजे पकड़कर उससे जूझने लगा और सोचने लगा कि 'भालू को कैसे और कहाँ फेंकूँ ?' इतने में दूसरा राहगीर आया, बोला : ''क्या है, क्या है ?'' इसने सोचा, 'अभी कहूँगा कि भालू ने पकड़ा है, भालू से मेरी जान छुड़ाओ तो यह भाग जायेगा।' वह बोला : ''देखो, भालू को हिलाता हूँ तो यह चाँदी के रुपये गिराता है। दूसरे भालू तो केवल लीद करते हैं पर यह लीद के साथ चाँदी के रुपये गिरा रहा है। इतने तो मैंने गिरवाये हैं, अब तुमको गिरवाने हों तो तुम भी पकड़कर गिरवा लो, तुम्हारी मर्जी !''

दूसरा बोला : ''अच्छा लाओ।'' पहले ने उसको पकड़ा दिया और खुद कुछ रुपये चुनकर भाग गया।

अब इसे पता चला कि 'मैं तो फँस गया।' सोचने लगा कि 'अब इससे कैसे पीछा छुड़ाऊँ !' वह भी परेशान हो गया। इतने में कोई तीसरा राहगीर निकला। उसने भी वैसे ही पूछा : ''क्या है, क्या है ?''

दूसरा बोला : ''यह अपनी लीद में चाँदी के रुपये निकालता है। इतने तो मैंने निकलवाये हैं जो यहाँ पड़े दिख रहे हैं, अब तुमको चाहिए तो तुम भी निकलवा लो।''

तीसरे ने पकड़ लिया। दूसरे ने गिरे हुए रुपये चुने और भाग गया। ऐसे ही चौथा आया, उसने भी पकड़ा। इस तरह वे एक-दूसरे को भालू पकड़ा के भागते गये। ऐसे ही यह कुल-परम्परा है... राजकाज, नौकरी, घर आदि।

बाप कहता है : ''बेटा ! अब तू बड़ा हो गया है, यह जिम्मेदारी सँभाल ले।'' सास कहती है : ''बहूरानी ! अब तू घर का कामकाज सँभाल ले। बेटी ! तू सँभाल ले।'' ये सब तो भालू पकड़ाने की बातें हैं। मुक्त होने की बात कोई नहीं कहेगा। उनमें छुड़ाने का सामर्थ्य भी नहीं है। संसाररूपी भालू से तो केवल परम कृपालु सद्गुरु ही छुड़ाते हैं। ❑

अमृत बिन्दु

(पूज्य बापूजी की अमृतवाणी)

आप मुसीबतों से खेलो, मुसीबतों को देखकर डरो मत। दुःख आते हैं तो आपका बल बढ़ाने के लिए, सूझबूझ और संयम बढ़ाने के लिए, त्याग बढ़ाने के लिए और सुख आता है तो उदारता, स्नेह और परदुःखकातरता बढ़ाने के लिए।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

'हे अर्जुन ! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सब में सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।' **(गीता : ६.३२)**

भगवान की प्रीति पाने का मास : माघ मास

(माघ मास व्रत : १९ जनवरी से १८ फरवरी)

'पद्म पुराण' के उत्तर खण्ड में माघ मास के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि व्रत, दान व तपस्या से भी भगवान श्रीहरि को उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी माघ मास में ब्राह्ममुहूर्त में उठकर स्नानमात्र से होती है ।

व्रतैर्दानैस्तपोभिश्च न तथा प्रीयते हरिः ।
माघमज्जनमात्रेण यथा प्रीणाति केशवः ॥

अतः सभी पापों से मुक्ति व भगवान की प्रीति प्राप्त करने के लिए प्रत्येक मनुष्य को माघ-स्नान व्रत करना चाहिए । इसका प्रारम्भ पौष की पूर्णिमा से होता है ।

माघ मास की ऐसी विशेषता है कि इसमें जहाँ कहीं भी जल हो, वह गंगाजल के समान होता है । इस मास की प्रत्येक तिथि पर्व है । कदाचित् अशक्तावस्था में पूरे मास का नियम न ले सकें तो शास्त्रों ने यह भी व्यवस्था की है कि तीन दिन अथवा एक दिन अवश्य माघ-स्नान व्रत का पालन करें । इस मास में स्नान, दान, उपवास और भगवत्पूजा अत्यंत फलदायी है ।

माघ मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी 'षट्तिला एकादशी' के नाम से जानी जाती है । इस दिन (२९ जनवरी) काले तिल तथा काली गाय के दान का भी बड़ा माहात्म्य है । तिलमिश्रित जल से स्नान, तिल का उबटन, तिल से हवन, तिलमिश्रित जल का पान व तर्पण, तिलमिश्रित भोजन, तिल का दान - ये छः कर्म पाप का नाश करनेवाले हैं ।

माघ मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या 'मौनी अमावस्या' के रूप में प्रसिद्ध है । इस पवित्र तिथि पर (२ फरवरी) मौन रहकर अथवा मुनियों के समान आचरणपूर्वक स्नान-दान करने का विशेष महत्त्व है । अमावस्या के दिन सोमवार का योग होने पर उस दिन देवताओं को भी दुर्लभ हो ऐसा पुण्यकाल होता है, क्योंकि गंगा, पुष्कर एवं दिव्य अंतरिक्ष और भूमि के जो सब तीर्थ हैं, वे 'सोमवती (दर्श) अमावस्या' के दिन जप, ध्यान, पूजन करने पर विशेष धर्मलाभ प्रदान करते हैं ।

मंगलवारी चतुर्थी, रविवारी सप्तमी, बुधवारी अष्टमी (१२ व २६ जनवरी), सोमवती अमावस्या (३ जनवरी) - ये चार तिथियाँ सूर्यग्रहण के बराबर कही गयी हैं । इनमें किया गया स्नान, दान व श्राद्ध अक्षय होता है ।

माघ शुक्ल पंचमी अर्थात् 'वसंत पंचमी' को माँ सरस्वती का आविर्भाव-दिवस माना जाता है । इस दिन (८ फरवरी) प्रातः सरस्वती-पूजन करना चाहिए । पुस्तक और लेखनी (कलम) में भी देवी सरस्वती का निवासस्थान माना जाता है, अतः उनकी भी पूजा की जाती है ।

शुक्ल पक्ष की सप्तमी को 'अचला सप्तमी' कहते हैं । षष्ठी के दिन एक बार भोजन करके सप्तमी (१० फरवरी) को सूर्योदय से पूर्व स्नान करने से पापनाश, रूप, सुख-सौभाग्य और सद्गति प्राप्त होती है ।

ऐसे तो माघ की प्रत्येक तिथि पुण्यपर्व है, तथापि उनमें भी माघी पूर्णिमा का धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है । इस दिन (१८ फरवरी) स्नानादि से निवृत्त होकर **(शेष पृष्ठ २३ पर)**

भारतीय मनोविज्ञान की महानता

पश्चिमी मनोवैज्ञानिक मान्यताओं के आधार पर विश्वशांति का भवन खड़ा करना बालू की नींव पर भवन बनाने के समान है। पाश्चात्य मनोविज्ञान का परिणाम पिछले दो विश्वयुद्धों के रूप में दिखाई पड़ता है। यह दोष आज पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों की समझ में आ रहा है। भारतीय मनोविज्ञान मनुष्य का दैवी रूपांतरण करके उसे आगे बढ़ाना चाहता है। उसके 'अनेकता में एकता' के सिद्धांत के आधार पर ही संसार के विभिन्न राष्ट्रों, सामाजिक वर्गों, धर्मों और प्रजातियों में सहिष्णुता ही नहीं, सक्रिय सहयोग उत्पन्न किया जा सकता है। भारतीय मनोविज्ञान में शरीर और मन पर भोजन का क्या प्रभाव पड़ता है, इस विषय से लेकर शरीर में विभिन्न चक्रों की स्थिति, कुण्डलिनी की स्थिति, वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रक्रिया आदि विषयों पर विस्तार से खोजें की गयी हैं। पाश्चात्य मनोविज्ञान केवल मानव-व्यवहार का विज्ञान है। दूसरे का शोषण करके अपना पोषण करना, गंजे को भी कंघी बेच के आओ... यह स्वार्थपूर्ण मनोविज्ञान मानवता का शोषक, विद्रोह, कलह और युद्ध का पोषक है। इसी मनोविज्ञान से लोग शोषित हो रहे हैं और बिनजरूरी, मानवता को नष्ट करनेवाले बम और हथियार बनवाये जा रहे हैं। कुटुम्ब-कलह, गर्लफ्रेंड-बॉयफ्रेंड और अमर्यादित भोगवासना इसी पाश्चात्य मनोविज्ञान की अंधी देन है, जो विकारी लोलुपता बढ़ाकर सदाचार और शांति, स्वास्थ्य और सच्चे सुख से, आत्मसुख से दूर करनेवाली है। भारतीय मनोविज्ञान मानस-विज्ञान के साथ-साथ आत्मविज्ञान है। भारतीय मनोविज्ञान इन्द्रियनियंत्रण पर विशेष बल देता है, जबकि पाश्चात्य मनोविज्ञान केवल मानसिक क्रियाओं या मस्तिष्क-संगठन पर बल देता है। उसमें मन द्वारा मानसिक जगत का ही अध्ययन किया जाता है। उसमें भी फ्रायड का मनोविज्ञान तो एक रुग्ण मन के द्वारा अन्य रुग्ण मनों का ही अध्ययन है, जबकि भारतीय मनोविज्ञान में इन्द्रिय-निरोध से मनोनिरोध और मनोनिरोध से आत्मसिद्धि को ही लक्ष्य मानकर अध्ययन किया जाता है। पाश्चात्य मनोविज्ञान में मानसिक तनावों से मुक्ति का कोई समुचित साधन परिलक्षित नहीं होता, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व में निहित निषेधात्मक परिवेशों के लिए स्थायी निदान प्रस्तुत कर सके। इसलिए फ्रायड के लाखों बुद्धिमान अनुयायी भी पागल हो गये। सम्भोग के मार्ग पर चलकर कोई भी व्यक्ति योगसिद्ध महापुरुष नहीं हुआ। उस मार्ग पर चलनेवाले खिन्नमना, निस्तेज और पागल हुए हैं। ऐसे कई नमूने हमने देखे हैं। इसके विपरीत भारतीय मनोविज्ञान में मानसिक तनावों से मुक्ति के विभिन्न उपाय बताये गये हैं। यथा - योगमार्ग, साधन-चतुष्टय, शुभ संस्कार, सत्संगति, सत्कर्म, क्षमा, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति, निष्काम कर्म आदि। इन साधनों से सुगठित एवं समायोजित व्यक्तित्व का निर्माण सम्भव है। इसलिए भारतीय मनोविज्ञान के अनुयायी पाणिनि और महाकवि कालिदास जैसे प्रारम्भ में अल्पबुद्धि होने पर भी महान विद्वान हो गये। भारतीय मनोविज्ञान ने इस विश्व को हजारों महान भक्त, समर्थ योगी तथा ब्रह्मज्ञानी महापुरुष दिये हैं। अतः पाश्चात्य मनोविज्ञान को छोड़कर

भारतीय मनोविज्ञान का आश्रय लेने में ही व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण निहित है ।

भारतीय मनोवैज्ञानिक महर्षि पतंजलि के सिद्धांतों पर चलनेवाले हजारों योगसिद्ध महापुरुष इस देश में हुए हैं, अभी भी हैं और आगे भी होते रहेंगे । बापूजी ने स्वयं ऐसे अदृश्य होनेवाले कई सिद्धियों के धनी योगियों से भेंट की हुई है । जैसे - बापूजी के मित्र संत नारायण बापू, जिनके आशीर्वाद ले के राष्ट्रपति जैल सिंह धन्य हुए; आनंदमयी माँ, जिनके चरणों में जा के इंदिरा गांधी धन्य होती थीं, ऐसे ही हिमालय में वर्षों की समाधि से सम्पन्न लम्बी आयुवाले महापुरुष मिले हैं, मिलते हैं । महर्षि योगानंद, स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज और पूज्य बापूजी भी ऐसे कई महापुरुषों से मिले हैं । योगी चांगदेव और ज्ञानेश्वर महाराज तो लोकप्रसिद्ध हैं ही ।

महर्षि पतंजलि के सिद्धांतों पर चलकर ऊँचाई को प्राप्त हुए और भी कई महापुरुष तथा राजा अश्वपति, राजा जनक और समर्थ रामदासजी, शिवाजी जैसे प्रसिद्ध और कई अप्रसिद्ध अनेकों उदाहरण इतिहास में देखने को मिलते हैं । जबकि सम्भोग के मार्ग पर चलकर कोई योगसिद्ध महापुरुष हुआ हो ऐसा हमने तो नहीं सुना, बल्कि दुर्बल हुए, रोगी हुए, एड्स के शिकार हुए, अकाल मृत्यु के शिकार हुए, खिन्नमना हुए, अशांत हुए, पागल हुए, ऐसे कई नमूने हमने देखे हैं ।

जो लोग मानव-समाज को पशुता में गिरने से बचाना चाहते हैं, भावी पीढ़ी का जीवन पैशाचिक होने से बचाना चाहते हैं, युवानों का शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता और बौद्धिक सामर्थ्य बनाये रखना चाहते हैं, इस देश के नागरिकों को एड्स जैसी घातक बीमारियों से ग्रस्त होने से बचाना चाहते हैं, स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते हैं उन सबका यह नैतिक कर्तव्य है कि वे गुमराह युवा पीढ़ी को 'दिव्य प्रेरणा-प्रकाश' जैसी पुस्तकें पढ़ायें ।

यदि काम-विकार उठा और हमने 'यह ठीक नहीं है... इससे मेरे बल-बुद्धि और तेज का नाश होगा...' ऐसा समझकर उसको टाला नहीं और उसकी पूर्ति करने में लम्पट होकर लग गये तो हममें और पशुओं में अंतर ही क्या रहा ! पशु तो किसी विशेष ऋतु में ही मैथुन करते हैं, बाकी ऋतुओं में नहीं । इस दृष्टि से उनका जीवन सहज व प्राकृतिक ढंग का होता है परंतु मनुष्य... ! मनुष्य तो बारहों महीने काम-क्रिया की छूट लेकर बैठा है । वासनावाले मनुष्य व्यर्थ के तर्क-कुतर्क, बकवास करके अपने को बर्बादी की खाई में गिरा देते हैं । अरे, अपने को विवेकपूर्वक रोक नहीं पाते हो, छोटे-छोटे सुखों में उलझ जाते हो - इसका तो कभी ख्याल ही नहीं करते और ऊपर से भगवान तक को अपने पापकर्मों में भागीदार बनाना चाहते हो !...

आत्मघाती तर्क :

कुछ समय पूर्व मेरे पास एक पत्र आया । उसमें एक व्यक्ति ने पूछा था : ''आपने सत्संग में कहा है और एक पुस्तिका में भी प्रकाशित हुआ है कि 'बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि मत पियो । ऐसे व्यसनों से बचो क्योंकि ये तुम्हारे बल और तेज का हरण करते हैं ।' यदि ऐसा ही है तो भगवान ने तम्बाकू आदि पैदा ही क्यों किये ?''

अब उन सज्जन से ये व्यसन तो छोड़े नहीं जाते और लगे हैं भगवान के पीछे ! भगवान ने गुलाब के साथ काँटे भी पैदा किये हैं । आप फूल छोड़कर काँटे तो नहीं सूँघते ! भगवान ने आग भी पैदा की है । आप उससे भोजन पकाते हो, अपना घर तो नहीं जलाते ! भगवान ने आक (मदार),

धतूरा, बबूल आदि भी बनाये हैं मगर उनकी तो आप सब्जी नहीं बनाते ! भगवान ने तो विष भी पैदा किया है । उसका उपयोग औषधि बनाने में करना है कि खाकर मरना है ? इन सबमें तो आप अपनी बुद्धि का उपयोग करके व्यवहार करते हो और जब आपका मन आपके कहने में नहीं होता तो आप लगते हो भगवान को दोष देने ! वासना के वेग में भगवान को दोष देना, यह बुद्धि का सदुपयोग नहीं बुद्धि का दिवाला है । शराब-तम्बाकू आदि दुर्व्यसनों व काम-विकार से बुद्धि और भी कमजोर हो जायेगी । व्यसनी और विकारी मन कपोलकल्पित तर्क का सहारा लेकर अपने को ले डूबता है । ॐ... ॐ... प्रभु ! सद्बुद्धि दे, ॐ... ॐ... प्रभु ! सद्गुण दृढ़ करे ।

शरीर के बल-बुद्धि की सुरक्षा के लिए वीर्यरक्षण बहुत आवश्यक है । पतंजलि के योगदर्शन में ब्रह्मचर्य की महत्ता इन शब्दों में बतायी गयी है :

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।

'ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर सामर्थ्य का लाभ होता है ।'

(योगदर्शन, साधनपाद : ३८)
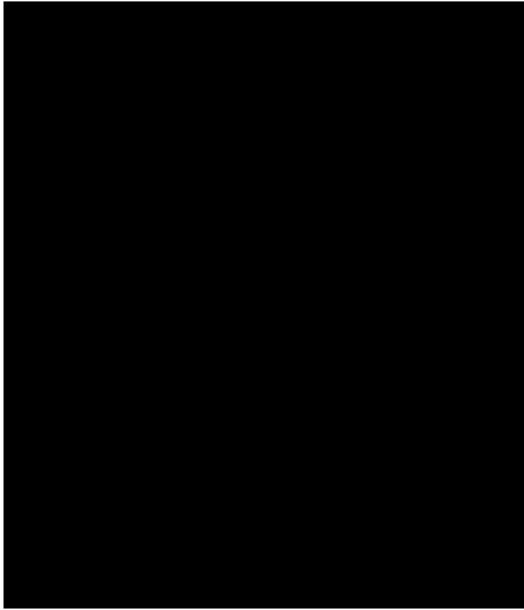
वेदांत की गरिमा

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

वेदांत की महिमा अद्भुत है, वेदांत हमें ज्ञानमयी दृष्टि देता है । जिस बेवकूफी के कारण यह संसार हमें सत्य एवं स्थिर भासता है, उसको हटाकर जिसकी सत्ता से ऐसा भासता है उस परमात्मा का साक्षात्कार करा देता है वेदांत । ज्ञान का आखिरी छोर, आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा है वेदांत । वेदांत का ठीक-ठीक श्रवण-मनन करनेवाला मनुष्य निर्भय हो जाता है । उसे किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा परिस्थिति के उपजने-नष्ट होने का भय नहीं रहता । यहाँ तक कि वह मौत से भी निर्भय हो जाता है क्योंकि उसको अनुभव हो जाता है कि 'मौत इस शरीर की होगी, मेरी नहीं ! मैं तो अजर, अमर, अविनाशी आत्मा हूँ ।' इसलिए अगर आप संसार में ही उन्नत होना चाहते हो तो भी आपका जीवन वेदांती होना चाहिए । अगर आप तंदुरुस्त रहना चाहते हो, प्रसिद्ध होना चाहते हो, दुःख-शोक से मुक्त निर्दुःख जीवन जीना चाहते हो, सब धर्मों के रहस्य को जानना चाहते हो तो वेदांत कहता है कि इधर आ जाओ । मूल की बात समझ लो, फिर पत्ते-डालियाँ आदि सबका सार आपको बता देंगे ।

वेदांत को समझना तभी सम्भव है जब जीव भक्तियुक्त पुरुषार्थ करके पाशवी अवस्था को त्यागकर उन्नत अवस्था में, चेतन अवस्था में जाने के लिए प्रयत्नशील हो । हृदय में भक्ति नहीं होती तो मनुष्य अपने सम्पूर्ण पुरुषार्थों से वंचित

हो जाता है। सारे पुरुषार्थ उसके पूर्ण नहीं होते - लड़के गद्दार हो जाते हैं, शरीर धोखा दे देता है, प्रवृत्ति प्रतिकूल हो जाती है, वाह-वाह करनेवाले आदमी मुँह चढ़ा लेते हैं, फिर क्या ! और मौत का झटका लगा तो सब गया । इसलिए वेदांत तुम्हें धंधा करने को, डॉक्टर होने को, वकील होने को अथवा सेठ होने को मना नहीं करता । वेदांत तुम्हें भिखारी नहीं बनाना चाहता बल्कि परम शहंशाह की पदवी पर बिठाना चाहता है ।

ऐसा नहीं कि आपको बाल-बच्चे, पत्नी छोड़ देने पड़ेंगे। वेदांत किसीको भिखमंगा नहीं बनाता, केवल बेवकूफी छुड़ा देता है । वेदांत तुम्हारे और ईश्वर के बीच की दूरी मिटा देता है । अरे ! वह जमाना था कि वेदांत को जाननेवाले लोगों के पास इतना धन-वैभव होता था कि वे लोग सुवर्ण की थालियों में भोजन करते थे। कभी किसी राज्य में अनावृष्टि, अतिवृष्टि अथवा और किसी कारण से यदि कुछ गड़बड़ी हो जाती और राजा शरण में आ जाता था तो राजा को धन-सम्पत्ति देकर राज्य-व्यवस्था सँभाल देते थे। संसारी प्रलोभनों के बीच रहते हुए भी कहीं किसीमें फँसते नहीं थे। वेदांत की महिमा ही ऐसी है कि उसीमें वे मस्त रहते थे ।

आप भी यदि एक बार वेदांत के ज्ञान से असंगता, निर्लिप्तता की उस ऊँचाई को छू लो, फिर आप व्यवहार में आओगे तो फँसोगे नहीं । फिर कितना भी धन-वैभव अथवा दरिद्रता आ जाय, असफलताएँ आयें आपको हिलायेंगी नहीं। वेदांत कोई आपसे सौ रुपया छुड़ाता नहीं है, आपसे मंत्री-पद छीनता नहीं है। अरे ! वेदांत को ठीक से समझो तो प्रधानमंत्री आपके दर्शन करके पाँव छूने की कोशिश करेगा। आप क्या समझते हैं वेदांत को ! कई मंत्री प्रधानमंत्री को प्रसन्न रखने की कोशिश करते हैं लेकिन वही प्रधानमंत्री ज्ञानियों की शरण में जाते हैं, नाक रगड़ते हैं और तभी उनका पद चलता है । वेदांत कोई जैसी-तैसी चीज थोड़े ही दे रहा है !

आनंदमयी माँ को वेदांत का अनुभव हुआ तो इंदिरा गांधी उनके पैर छूने जाती थीं। और मंत्री लोग तो इंदिरा के पैर छूने में लगे रहते थे। उसके पक्ष के लोग भी आनंदमयी माँ को राजी करने में लग जाते थे। तत्कालीन केन्द्रीय मंत्रियों के आगे इंदिरा सर्वेश्वर थीं पर वह भी देखो, ज्ञानियों के आगे कुछ भी तो नहीं ! ऐसा ज्ञान है वेदांत का ! हमारा-उनका यह सौभाग्य है कि संतों के पास जाते हैं।

संत तुमको वही चीज देना चाहते हैं जिससे वे स्वयं धनवान हो गये। तुम पूरे वेदांत को न समझो, न पाओ, पूरा-का-पूरा साक्षात्कार नहीं करो तो चौथाई तो करो ! चौथाई नहीं तो दस प्रतिशत तो करो ! कम-से-कम दस प्रतिशत भी तुम्हारे जीवन में वेदांत आता है न, तो महाराज ! आज के दिनों पर तुम हँसोगे कि अरे ! अब तक हम क्या थे !

राजा भर्तृहरि कहते हैं कि जब थोड़ा सत्संग सुना तो कुछ-कुछ मैंने जाना । मैं राजा था तब समझता था कि मैं कितना भाग्यशाली हूँ, कितना बुद्धिमान हूँ, पूरे राज्य पर नियंत्रण किये हुए हूँ ! अब पता चला कि अपने मन को तो मैंने नियंत्रित किया नहीं ! अपने हृदय में बसे हुए यार का तो दर्शन किया नहीं और राज्य मेरा है, मैं उसका राजा हूँ - ऐसा अभिमान करता था ! अरे ! आकाशगंगा में छोटा-सा सूर्य, उसका एक ग्रह है पृथ्वी, पृथ्वी पर सौ से अधिक राष्ट्र, उनमें से एक भारत और भारत में कई राजा आ-आ के मर गये। ऐसे राज्य से, जो किसीका न रहा न कोई उसका रहा, मैं अपने को भाग्यशाली मानता था। अब पता चला कि मैं बेवकूफ था ।

आप भी आत्मनिष्ठा में जगे हुए महापुरुषों के सत्संग तथा सत्साहित्य से अपने जीवन को आत्मविश्वास, श्रद्धा-भक्ति, प्रेम व वेदांत से पुष्ट एवं पुलकित करें। व्यवहार में वेदांत का उपयोग करना सीखकर, सुखमय जीवन व हँसते-खेलते प्रसन्नतामय जीवन जीने की कला सीखकर जीवन्मुक्त हो जायें। ❒

परमात्म-प्रकाश प्रकटाओ

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

विश्व की जो भी शक्ति है वह उस परमात्मा की है। ऐसा कोई बुद्धिमान नहीं, ऐसा कोई बलवान नहीं जो अलग से बल लाता हो। जो भी बल है, सामर्थ्य है, बुद्धि है, योग्यता है उसका उद्‌गम-स्थान, पोषक-स्थान आत्मा-परमात्मा है। शास्त्रों में आता है कि जब तक शरीर में सबलता है, इन्द्रियों में कुछ समझने की क्षमता है, बुद्धि में योग्यता है और बुढ़ापे ने गला नहीं दबाया तब तक के समय में अपना परमात्म-प्रकाश कर लेना चाहिए।

परमात्म-प्रकाश कहने से ऐसा नहीं समझना कि केवल रोशनी को प्रकाश बोलते हैं। नहीं, आनंद-आनंद आये, सुख-दुःख में समता आये यह परमात्म-प्रकाश है। जगत सपने की नाईं लगे और उसको निहारनेवाला साक्षी चैतन्य नित्य है, ऐसा लगे यह परमात्म-प्रकाश है। राग और द्वेष का अधिक प्रभाव न पड़े तो समझो कि यह परमात्म-प्रकाश है। **परमात्मा प्रकाशते।**

जैसे दरिया तक आते-आते दरियाई हवाओं से माहौल, हवामान बदल जाता है। हम समझ जाते हैं कि दरिया पास है, ऐसे ही परमात्मा का अनुभव होने के पहले परमात्मा का स्वभाव अपने हृदय में आता है अर्थात् निर्भयता आने लगती है, ज्ञानयोग में स्थिति होने लगती है, इन्द्रियों का संयम होने लगता है, स्वभाव में सरलता आने लगती है। भगवत्प्राप्ति के छब्बीस दैवी सद्‌गुणों का प्राकट्य होने लगता है।

'सामवेद' के 'संन्यास उपनिषद्' में लिखा है :

यस्तु द्वादशसाहस्रं प्रणवं जपतेऽन्वहम्।
तस्य द्वादशभिर्मासैः परं ब्रह्म प्रकाशते॥

'जो मनुष्य प्रणव (ॐ) का प्रतिदिन बारह हजार जप करता है, उसे बारह माह में ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है।' **(अध्याय २, मंत्र १२३)**

अगर कोई ईमानदारी से लग जाय तो एक वर्ष के अनुष्ठान में परमात्मा-प्रकाश हो जाता है। प्रतिदिन ओंकार का बारह हजार बार जप करे व नीच कर्मों का त्याग कर दे तथा ईश्वर-प्राप्ति का उद्देश्य बना ले तो एक वर्ष के अंदर ईश्वरप्राप्ति ! एक साल में स्नातक पद नहीं मिलता। एक साल में कोई ऊँचे पद को नहीं पा लेता लेकिन सारे ऊँचे पद नन्हे हो जायें ऐसे परमात्मा को पा सकता है।

गुरु को, भगवान को एकटक देखें फिर ओंकार का गुंजन करें। थोड़े ही दिनों में गुरुमूर्ति से, भगवन्मूर्ति से प्रकाश, आनंद और प्रेरणा आयेगी तथा बुद्धि ऐसी बढ़िया और शुद्ध होगी कि महाराज ! बुद्धिदाता भगवान अपने आत्मा हैं इस प्रकार का प्रकाश प्राप्त हो जायेगा।

शरीर लाचार हो जाय, बीमारी हो जाय, रुग्ण-अवस्था आ जाय, पराधीनता आ जाय उसके पहले स्वाधीन हो जाओ। 'स्व' के, परमात्मा के अनुभव में जाग जाओ। ❐

✲ ज्ञान के कठिन मार्ग पर चलते वक्त आपके सामने जब भारी कष्ट एवं दुःख आयें तब आप उन्हें सुख समझो क्योंकि इस मार्ग में कष्ट एवं दुःख ही नित्यानन्द प्राप्त करने में निमित्त बनते हैं। अतः उन कष्टों, दुःखों और आघातों से किसी भी प्रकार साहसहीन मत बनो, निराश मत बनो। सदैव आगे बढ़ते रहो। जब तक अपने सत्यस्वरूप को यथार्थ रूप से न जान लो, तब तक रुको नहीं।

(आश्रम से प्रकाशित 'जीवन रसायन' पुस्तक से)

प्रश्न : साँईं ! साधन करते हुए भी मन पुराने संस्कारों में गिरने लगे तो क्या करना चाहिए ?

पूज्यश्री : मन से लड़ो मत । साधन करते हुए भी मन पुराने संस्कारों में जाता है तो उसके जाने-न जाने की उपेक्षा कर दो । 'पुराने संस्कार मेरे नहीं हैं, मन के हैं, चित्त के हैं । मेरे तो भगवान हैं ।' और पुराने संस्कार अच्छे हों तो भी क्या, बुरे हैं तो भी क्या; संस्कार तो संस्कार हैं ! तरंग तो तरंग है और क्या है ! कचरा तो कचरा है । होता है, जाता है । 'ऐसा होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए' - कोई आग्रह नहीं रखो । उन पुराने संस्कारों को महत्त्व न दो । न उनमें डूबो, न उनसे भिड़ो । न उनको रोको, न उनके साथ चलो । उपेक्षा... जैसे यहाँ आते समय रास्ते में कितना ट्रैफिक मिला होगा, कितने उतार-चढ़ाव आये होंगे लेकिन आपको अभी कोई भी ज्यादा याद नहीं है । आपने सबकी उपेक्षा की क्योंकि लक्ष्य इधर का था । ऐसे ही लक्ष्य रखो अपनी समता में, अपने आनंद में, अपने सच्चिदानंद स्वभाव में आने का, बाकी जो हुआ, हुआ । उसे महत्त्व नहीं दो । उसमें महत्त्वबुद्धि हटा दो तो आसान तरीका हो गया ।

प्रश्न : गुरुदेव ! सब कुछ जानते हुए भी मन में संशय उत्पन्न हो जाता है ।

पूज्यश्री : सब कुछ क्या जानते हो ?

प्रश्नकर्ता : जैसे कोई सही चीज हो तो उसके विषय में मन में द्वन्द्व उत्पन्न होने लगता है कि यह ऐसा है कि ऐसा है ?

पूज्यश्री : जब सब कुछ जानते हो तो द्वन्द्व कैसे उत्पन्न होता है ?

प्रश्नकर्ता : मालूम है कि संसार झूठा है फिर भी मन उसमें उलझता है ।

पूज्यश्री : हाँ तो पुराने संस्कार हैं न, तो होता है । मिथ्या संसार सच्चा लग रहा है क्योंकि पुराने संस्कार हैं कई जन्मों के और उनको सच्चा मान के जी रहे हैं और अभी केवल सुनकर एकदम से दृढ़ता नहीं होती तो द्वन्द्व होता है । संसार के मिथ्यात्व के प्रति सजग रहना, यही तो सावधानी है । इसीको तो साधना कहते हैं । सावधानी का नाम ही साधना है । यही पुरुषार्थ है । **पुरुषस्य अर्थ इति पुरुषार्थः ।** उस परमात्मा के अर्थ प्रयत्न करना, कोशिश करना पुरुषार्थ है । किसीने रुपये-पैसे कमाये, पद पाया तो बोले : 'अरे ! इसने पुरुषार्थ किया ।' क्या खाक पुरुषार्थ किया ! वह तो प्रकृति-अर्थ किया । पुरुषार्थ तो यह है कि भगवान में टिकने का यत्न हो । यह पुरुषार्थ करो, 'ईश्वर की ओर' पढ़ो और दूसरी कोई छोटी-मोटी पुस्तक-सत्साहित्य पढ़ो अथवा जहाँ रहते हो वहीं ऐसे विचार करो कि 'आखिर यह कब तक ? यह भी गुजर जायेगा, यह भी बीत जायेगा, यह भी नहीं रहेगा, परमात्मा के सिवाय सब सपना है, उसको जाननेवाला प्रभु अपना है' आदि-आदि । ऐसे सूत्र घरों में दीवालों पर लिखे रहें तो ये पक्के हो जायेंगे । ये सभीके फायदे के लिए हैं । ❐

भूषणानां भूषणं क्षमा

एक साधक ने अपने दामाद को तीन लाख रुपये व्यापार के लिए दिये। उसका व्यापार बहुत अच्छा जम गया लेकिन उसने रुपये ससुरजी को नहीं लौटाये। आखिर दोनों में झगड़ा हो गया। झगड़ा इस सीमा तक बढ़ गया कि दोनों का एक-दूसरे के यहाँ आना-जाना बिल्कुल बंद हो गया। घृणा व द्वेष का आंतरिक संबंध अत्यंत गहरा हो गया। साधक हर समय हर संबंधी के सामने अपने दामाद की निंदा, निरादर व आलोचना करने लगे। उनकी साधना लड़खड़ाने लगी। भजन-पूजन के समय भी उन्हें दामाद का ही चिंतन होने लगा। मानसिक व्यथा का प्रभाव तन पर भी पड़ने लगा। बेचैनी बढ़ गयी। समाधान नहीं मिल रहा था। आखिर वे एक संत के पास गये और अपनी व्यथा कह सुनायी।

संतश्री ने कहा : ''बेटा ! चिंता न करो। ईश्वरकृपा से सब ठीक हो जायेगा। तुम कुछ फल व मिठाइयाँ लेकर दामाद के यहाँ जाना और मिलते ही उससे केवल इतना कहना, बेटा ! सारी भूल मुझसे हुई है, मुझे क्षमा कर दो।''

साधक ने कहा : ''महाराज ! मैंने ही उसकी मदद की है और क्षमा भी मैं ही माँगूँ !''

संतश्री ने उत्तर दिया : ''परिवार में ऐसा कोई भी संघर्ष नहीं हो सकता, जिसमें दोनों पक्षों की गलती न हो। चाहे एक पक्ष की भूल एक प्रतिशत हो और दूसरे पक्ष की निन्यानवे प्रतिशत, पर भूल दोनों तरफ से होगी।''

साधक की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसने कहा : ''महाराज ! मुझसे क्या भूल हुई ?''

''बेटा ! तुमने मन-ही-मन अपने दामाद को बुरा समझा - यह है तुम्हारी पहली भूल। तुमने उसकी निंदा, आलोचना व तिरस्कार किया - यह है तुम्हारी दूसरी भूल। क्रोधपूर्ण आँखों से उसके दोषों को देखा - यह है तुम्हारी तीसरी भूल। अपने कानों से उसकी निंदा सुनी - यह है तुम्हारी चौथी भूल। तुम्हारे हृदय में दामाद के प्रति क्रोध व घृणा है - यह है तुम्हारी आखिरी भूल। अपनी इन भूलों से तुमने अपने दामाद को दुःख दिया है। तुम्हारा दिया दुःख ही कई गुना हो तुम्हारे पास लौटा है। जाओ, अपनी भूलों के लिए क्षमा माँगो। नहीं तो तुम न चैन से जी सकोगे, न चैन से मर सकोगे। क्षमा माँगना बहुत बड़ी साधना है।''

साधक की आँखें खुल गयीं। संतश्री को प्रणाम करके वे दामाद के घर पहुँचे। सब लोग भोजन की तैयारी में थे। उन्होंने दरवाजा खटखटाया। दरवाजा उनके दोहते ने खोला। सामने नानाजी को देखकर वह अवाक्-सा रह गया और खुशी से झूमकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा : ''मम्मी ! पापा !! देखो तो नानाजी आये हैं, नानाजी आये हैं...।''

माता-पिता ने दरवाजे की तरफ देखा। सोचा, 'कहीं हम सपना तो नहीं देख रहे !' बेटी हर्ष से पुलकित हो उठी, 'अहा ! पन्द्रह वर्ष के बाद आज पिताजी आये हैं।' प्रेम से गला रुँध गया, कुछ बोल न सकी। साधक ने फल व मिठाइयाँ टेबल पर रखीं और दोनों हाथ जोड़कर दामाद को कहा : ''बेटा ! सारी भूल मुझसे हुई है, मुझे क्षमा करो।''

'क्षमा' शब्द निकलते ही उनके हृदय का प्रेम अश्रु बनकर बहने लगा। दामाद उनके चरणों में गिर गये और अपनी भूल के लिए रो-रोकर क्षमा-

याचना करने लगे । ससुरजी के प्रेमाश्रु दामाद की पीठ पर और दामाद के पश्चात्ताप व प्रेममिश्रित अश्रु ससुरजी के चरणों में गिरने लगे । पिता पुत्री से और पुत्री अपने वृद्ध पिता से क्षमा माँगने लगी । क्षमा व प्रेम का अथाह सागर फूट पड़ा । सब शांत, चुप ! सबकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी । दामाद उठे और रुपये लाकर ससुरजी के सामने रख दिये । ससुरजी कहने लगे : ''बेटा ! आज मैं इन कौड़ियों को लेने के लिए नहीं आया हूँ। मैं अपनी भूल मिटाने, अपनी साधना को सजीव बनाने और द्वेष का नाश करके प्रेम की गंगा बहाने आया हूँ। मेरा आना सफल हो गया, मेरा दुःख मिट गया । अब मुझे आनंद का एहसास हो रहा है ।''

दामाद ने कहा : ''पिताजी ! जब तक आप ये रुपये नहीं लेंगे तब तक मेरे हृदय की तपन नहीं मिटेगी । कृपा करके आप ये रुपये ले लें ।''

साधक ने दामाद से रुपये लिये और अपनी इच्छानुसार बेटी व नातियों में बाँट दिये । सब कार में बैठे, घर पहुँचे । पन्द्रह वर्ष बाद उस अर्धरात्रि में जब माँ-बेटी, भाई-बहन, ननद-भाभी व बालकों का मिलन हुआ तो ऐसा लग रहा था कि मानो साक्षात् प्रेम ही शरीर धारण किये वहाँ पहुँच गया हो । सारा परिवार प्रेम के अथाह सागर में मस्त हो रहा था । क्षमा माँगने के बाद उस साधक के दुःख, चिंता, तनाव, भय, निराशारूपी मानसिक रोग जड़ से ही मिट गये और साधना सजीव हो उठी ।

क्षमा वीरों का भूषण है, साधकों की उच्चतम साधना है । अपनी भूल के लिए क्षमा माँग लेना और भूल करनेवाले को क्षमा कर देना मानव का सुंदरतम आभूषण है । क्षमा अपने व्यक्तिगत व पारिवारिक जीवन को सरसतम बनाने की अनुपम विद्या है ।

नरस्य भूषणं रूपं रूपस्य भूषणं गुणम् ।
गुणस्य भूषणं ज्ञानं ज्ञानस्य भूषणं क्षमा ॥

किसीके पास प्रकृतिप्रदत्त सुंदर रूप हो तो लौकिक दृष्टि से यह एक गुण माना जा सकता है । सुंदर रूप तो हो पर सद्गुणविहीन हो तो ऐसा रूप भी किस काम का ! अतः रूप की शोभा गुणों से है । उत्तम गुणों से सम्पन्न होने पर भी यदि ज्ञान न हो तो व्यक्ति के सारे दुःख नहीं मिटेंगे ।

यहाँ ज्ञान का तात्पर्य लौकिक ज्ञान से नहीं बल्कि आध्यात्मिक ज्ञान से है । यह भगवद्ज्ञान ही समस्त सद्गुणों का धाम है और इसका आभूषण है 'क्षमा' । जैसे वृक्ष फलयुक्त होकर झुक जाते हैं, वैसे ही ज्ञान से व्यक्ति क्षमाशील व नम्र हो जाता है । लौकिक ज्ञान तो स्कूल-कॉलेजों में मिल जाता है पर भगवद्ज्ञान तो संतों के संग से ही मिलता है । **वासुदेवः सर्वम्...** की सुंदर सीख तो संतों के पावन सान्निध्य से ही मिलती है । व्यक्ति के जीवन में यदि इस प्रकार के आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वय न हो तो उसके सारे सद्गुण उसके अहंकार को पुष्ट करके उसे पतन की खाई में धकेल देते हैं । यह अध्यात्म-ज्ञान जब जीवन में आता है तब क्षमाशीलता बुलानी नहीं पड़ती, स्वतः आ जाती है । क्षमा तो आभूषणों का भी आभूषण है ! ❐

(पृष्ठ १५ से 'भगवान की प्रीति पाने का मास : माघ मास' का शेष) भगवत्पूजन, श्राद्ध तथा दान करने का विशेष फल है । जो इस दिन भगवान शिव की विधिपूर्वक पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल पाकर भगवान विष्णु के लोक में प्रतिष्ठित होता है ।

माघी पूर्णिमा के दिन तिल, सूती कपड़े, कम्बल, रत्न, पगड़ी, जूते आदि का अपने वैभव के अनुसार दान करके मनुष्य स्वर्गलोक में सुखी होता है । 'मत्स्य पुराण' के अनुसार इस दिन जो व्यक्ति 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' का दान करता है, उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । ❐

पुत्रदा एकादशी

(पुत्रदा एकादशी : १६ जनवरी)

युधिष्ठिर बोले : ''श्रीकृष्ण ! कृपा करके पौष मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी का माहात्म्य बतलाइये। उसका नाम क्या है ? उसे करने की विधि क्या है ? उसमें किस देवता का पूजन किया जाता है ?''

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : ''राजन् ! पौष मास के शुक्ल पक्ष की जो एकादशी है, उसका नाम 'पुत्रदा' है।

'पुत्रदा एकादशी' को नाम-मंत्रों का उच्चारण करके फलों के द्वारा श्रीहरि का पूजन करे। नारियल के फल, सुपारी, बिजौरा नींबू, जमीरा नींबू (कागजी), अनार, सुंदर आँवला, लौंग तथा बेर के फलों से देवदेवेश्वर श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए। इसी प्रकार धूप-दीप से भी भगवान की अर्चना करे।

'पुत्रदा एकादशी' को विशेषरूप से दीपदान करने का विधान है। रात को वैष्णव पुरुषों (श्रद्धा-भक्तिवाले, भक्तिभाववाले साधक) के साथ जागरण करना चाहिए। जागरण करनेवाले को जिस फल की प्राप्ति होती है, वह हजारों वर्षों तक तपस्या करने से भी नहीं मिलता। यह सब पापों को हरनेवाली उत्तम तिथि है।

चराचर जगतसहित समस्त त्रिलोकी में इससे बढ़कर दूसरी कोई तिथि नहीं है। समस्त कामनाओं तथा सिद्धियों के दाता भगवान नारायण इस तिथि के अधिदेवता हैं।

पूर्वकाल की बात है, भद्रावतीपुरी में राजा सुकेतुमान राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चम्पा था। राजा को बहुत समय तक कोई वंशधर पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए दोनों पति-पत्नी सदा चिंता और शोक में डूबे रहते थे। राजा के पितर उनके दिये हुए जल को शोकोच्छ्वास से गरम करके पीते थे। 'राजा के बाद और कोई ऐसा दिखाई नहीं देता, जो हम लोगों का तर्पण करेगा...' यह सोच-सोचकर पितर दुःखी रहते थे।

एक दिन राजा घोड़े पर सवार हो गहन वन में चले गये। पुरोहित आदि किसीको भी इस बात का पता न था। मृग और पक्षियों से सेवित उस सघन वन में राजा भ्रमण करने लगे। मार्ग में कहीं सियार की बोली सुनायी पड़ती थी तो कहीं उल्लुओं की। जहाँ-तहाँ भालू और मृग दृष्टिगोचर हो रहे थे। इस प्रकार घूम-घूमकर राजा वन की शोभा देख रहे थे, इतने में दोपहर हो गयी। राजा को भूख और प्यास सताने लगी। वे जल की खोज में इधर-उधर भटकने लगे। किसी पुण्य के प्रभाव से उन्हें एक उत्तम सरोवर दिखाई दिया, जिसके समीप मुनियों के बहुत-से आश्रम थे। शोभाशाली नरेश ने उन आश्रमों की ओर देखा। उस समय शुभ की सूचना देनेवाले शकुन होने लगे। राजा का दाहिना नेत्र और दाहिना हाथ फड़कने लगा, जो उत्तम फल की सूचना दे रहा था। सरोवर के तट पर बहुत-से मुनि वेदपाठ कर रहे थे। उन्हें देखकर राजा को बड़ा हर्ष हुआ। वे घोड़े से उतरकर मुनियों के सामने खड़े हो गये और पृथक्-पृथक् उन सबकी वंदना करने लगे। वे मुनि उत्तम व्रत का पालन करनेवाले थे। जब राजा ने हाथ जोड़कर बारम्बार दण्डवत् किया, तब मुनि बोले :

'राजन् ! हम लोग तुम पर प्रसन्न हैं ।'

राजा बोले : 'आप लोग कौन हैं ? आपके नाम क्या हैं तथा आप लोग यहाँ किसलिए एकत्रित हुए हैं ? कृपया यह सब बताइये ।'

मुनि बोले : 'राजन् ! हम लोग विश्वेदेव (चरित्रवान, सदाचारी, व्यसनमुक्त ब्राह्मण) हैं । यहाँ स्नान के लिए आये हैं । माघ मास निकट आ गया है । आज से पाँचवें दिन माघ का स्नान आरम्भ हो जायेगा । आज ही 'पुत्रदा' नाम की एकादशी है, जो व्रत करनेवाले मनुष्यों को पुत्र देती है ।'

राजा ने कहा : 'विश्वेदेवगण ! यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो मुझे पुत्र दीजिये ।'

मुनि बोले : 'राजन् ! आज 'पुत्रदा' नाम की एकादशी है । इसका व्रत बहुत विख्यात है । तुम आज इस उत्तम व्रत का पालन करो । महाराज ! भगवान केशव के प्रसाद से तुम्हें पुत्र अवश्य प्राप्त होगा ।''

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : ''युधिष्ठिर ! इस प्रकार उन मुनियों के कहने से राजा ने उक्त उत्तम व्रत का पालन किया । महर्षियों के उपदेश के अनुसार विधिपूर्वक 'पुत्रदा एकादशी' का अनुष्ठान किया । फिर द्वादशी को पारण करके मुनियों के चरणों में बारम्बार मस्तक झुकाकर राजा अपने घर आये । तदनंतर रानी ने गर्भधारण किया । प्रसवकाल आने पर पुण्यकर्मा राजा को तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुआ, जिसने अपने गुणों से पिता को संतुष्ट कर दिया । वह प्रजा का पालक हुआ ।

इसलिए राजन् ! 'पुत्रदा' का उत्तम व्रत अवश्य करना चाहिए । मैंने लोगों के हित के लिए तुम्हारे सामने इसका वर्णन किया है । जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर 'पुत्रदा एकादशी' का व्रत करते हैं, वे इस लोक में पुत्र पाकर मृत्यु के पश्चात् स्वर्गगामी होते हैं । इस माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है ।'' ❐

भक्तों पर करते रहमत निराली

मैं १९८२ से शराब, सिगरेट, पान आदि का व्यसन करता था । मेरा भगवान पर विश्वास नहीं था लेकिन मेरी पत्नी पूज्य बापूजी का सत्संग सुनती व पूजा भी करती थी । मैं पंजाब नेशनल बैंक में नौकरी करता था । जब मैंने अधिकारी वर्ग के लिए परीक्षा दी तो पत्नी ने बापूजी से मन्नत माँगी और मैं अधिकारी बन गया ।

गुरुकृपा से अचानक मुझे व्यसन से घृणा हो गयी । १९ मार्च २००८ को दिल्ली में पूज्य बापूजी का सत्संग था । पत्नी के आग्रह पर मैं परिवारसहित सत्संग में पहुँचा । वहाँ बहुत भीड़ थी । पंडाल में पीछे खड़े होकर हम सत्संग सुन रहे थे । हमें बापूजी के ठीक से दर्शन भी नहीं हो पा रहे थे, पर गुरुदेव के श्रीमुख से निकली हितकारी वाणी को सुनकर असीम शांति और आनंद का अनुभव हो रहा था । मैंने सपरिवार मंत्रदीक्षा ले ली और तब से मैं गुरुमंत्र का नियमित जप करता हूँ । २००८ में प्रबन्धक पद पर प्रमोशन के लिए मैंने परीक्षा दी । बापूजी ने एक दिन सपने में आकर कहा कि मैं पास हो गया हूँ और अहमदाबाद पोस्टिंग मिली है परंतु परीक्षा-परिणाम आया तो मैं फेल था । शाम को बापूजी की तस्वीर के सामने रोते हुए उलाहना दे रहा था, तभी अंदर से आवाज आयी कि 'तू पास हो गया है ।' ०१/११/२००८ को पत्र आया कि मैं पास हो गया हूँ और मेरी अहमदाबाद सर्किल में पोस्टिंग हुई है । तभी से मैं पालनपुर में प्रबन्धक के पद पर हूँ । गुरुकृपा ने तो मेरा जीवन ही बदल दिया ! सद्गुरुदेव के श्रीचरणों में मेरे कोटि-कोटि प्रणाम हैं ।

- रघुबीर सिंह, प्रबन्धक, पी.एन.बी., पालनपुर (गुज.), मो. : ९९७८८८५४१४. ❐

- श्री परमहंस अवतारजी महाराज

❊ काम और नाम दोनों एक जगह नहीं रहते। यदि नाम में उन्नति करना चाहते हो तो काम के बहाव में बहने से स्वयं को बचाओ।

❊ प्रभुप्राप्ति की यदि लगन है तो अंतःकरण को शुद्ध करते रहो। विकारी हृदय में निर्विकारी प्रभु कैसे आयेंगे !

❊ प्रभु तुम्हारे अंग-संग हैं। तुम्हारी वृत्ति बहिर्मुखी होने के कारण तुम्हें दृष्टिगोचर नहीं होते।

❊ आंतरिक विकार जीव के प्रबल शत्रु हैं। प्रत्येक व्यक्ति का उनसे मुक्त होना आसान काम नहीं है। परंतु विरले गुरुमुखी निरंतर प्रयास और सद्गुरु की कृपा से उन पर विजय प्राप्त करते हैं।

❊ कमजोर व्यक्ति ही शत्रु के आगे झुकता है। सूरमा तो मरणकाल तक सामना करता रहता है परंतु एक पग पीछे नहीं हटाता। यदि काम-क्रोध तुम पर हमला करते हैं तो सद्गुरु से प्राप्त गुरुमंत्र के जप एवं उनके सत्संग-वचनों द्वारा उन पर विजय प्राप्त करो।

❊ आत्मिक पथ पर चलते हुए कामिनी और कंचन इन दोनों से बचकर चलो। ये दोनों इस मार्ग में रुकावट डालते हैं।

❊ भोजन सत्त्वगुणी, हलका और कम खाओ तो श्वास सरलता से चलेंगे और ध्यान-भजन में सहयोग मिलेगा।

❊ चिंता चिता से भी बुरी है। चिता तो पल में जलाकर भस्म कर देती है परंतु चिंता आजीवन जलाती रहती है।

❊ मन को इन्द्रिय विषय-विकारों की ओर जाने से रोककर सुमिरन और सेवा में निरंतर लगाओगे तो उस पुरुषार्थ का फल आत्मिक लाभ होगा।

❊ मन भजन में नहीं लगे तो बार-बार भजन और गुरुदर्शन में लगाओ। एक दिन ऐसा आयेगा कि मन गुरुदर्शन के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में नहीं लगेगा। एकलव्य की नाईं **ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः** का फायदा उठाओ। गुरुमूर्ति से प्रकाश निकलता है, सांत्वना मिलती है, कई अनुभूतियाँ होती हैं, उस रस में रम जायें।

कबीरजी भी कहते हैं :

दरशन कीजे साधु का दिन में कई कई बार।
आसोजा का मेह ज्यों बहुत करै उपकार ॥
कई बार नहीं करि सकै दोय बखत करि लेय।
कबीर साधू दरस ते काल दगा नहीं देय ॥

❊ जो कुछ प्रभु प्रदान करें उसे प्रसाद समझकर प्रसन्नता से खाओ। खाते समय क्रोध न करो, चिंताएँ भुला दो तो उसमें अमृत के समान स्वाद आयेगा।

❊ नाम-सुमिरन, गुरुदर्शन, गुरु-सत्संग से ही अंतःकरण शुद्ध होता है और उसीके द्वारा शुभ कर्म भी सम्पन्न होते हैं। कई लोग नाम-सुमिरन छोड़ अन्य शुभ कर्म आरम्भ कर देते हैं, जिससे वे बीच मार्ग में ही गिर जाते हैं। किसीको अहंकार गिरा देता है, किसीको कर्मफल की इच्छा आगे बढ़ने से रोक लेती है (तो किसीको भक्त-भक्तानियों के टिफिन खाना और फ्लैटों में निवास करना ले डूबते हैं)। ❐

आठ गुणों का विकास, जीवन में लाये ज्ञान-प्रकाश

(पूज्य बापूजी की बोधमयी अमृतवाणी)

अगर आपको अपना व्यक्तित्व निखारना है, अपना प्रभाव विकसित करना है तो जीवन में आठ सद्गुण ले आइये । ये आठ सद्गुण और नौवीं आरोग्यप्रद 'स्थलबस्ति' आपके प्रभाव में चार चाँद लगायेंगे । कितना भी साधारण आदमी हो, तुच्छ हो तो भी वह बड़ा प्रभावशाली हो जायेगा ।

(१) कला प्रभावोत्पादक मानवीय व्यवहार । पशु जैसा व्यवहार नहीं, कूड-कपट, बेईमानी नहीं, मानी जैसा व्यवहार नहीं, मनुष्य को शोभा दे ऐसा व्यवहार करें । कर्मों की गति गहन है, इसलिए ऐसे कर्म करो जिससे भगवान की प्रीति जगे । ऐसा चिंतन करो कि अपना आत्मा-परमात्मा, जो अपने साथ, अपने पास है, उसको जानने की ललक जगे ।

(२) दूसरों के महत्त्व को भी स्वीकार करें । दूसरों के अंदर भी गुण हैं । अपने द्वारा उनका विकास हो तो अच्छा है, नहीं तो उनका अंदर से मंगल चाहें । डाँटें तो भी मंगल की भावना से ।

(३) आनंदित रहें, प्रसन्न रहें, मित्र-भावना से सम्पन्न रहें । आनंदित और प्रसन्न रहने के लिए बैठे-बैठे या लेटे-लेटे दोनों नथुनों से खूब श्वास लें, पेट भर लें, फिर 'अशांति, खिन्नता और रोग के कण बाहर निकल रहे हैं ।'- ऐसी भावना करते हुए मुँह से छोड़ें । इससे निरोगता भी बढ़ेगी और प्रसन्नता भी बढ़ेगी । रोज सुबह १० से १२ बार ऐसा कर लें ।

(४) आत्मसंयम । जो नहीं खाना चाहिए, जो नहीं करना चाहिए, बस उससे अपने को बचायें तो जो करना चाहिए वह अपने-आप होने लगेगा ।

(५) अपना उद्देश्य निश्चित करें कि 'मुझे अपने आत्मा-परमात्मा को पाना है । जिसको पाना सहज है, अभागा मन, अभागी बुद्धि तू उधर क्यों नहीं चलती ! जिसको पाये बिना दुर्भाग्य का अंत नहीं होता और जिसको पाने से कोई कमी नहीं रहती, तू उसको पा ले न !'- ऐसा अपने मन को समझायें ।

'यह बना लिया, वह बना लिया...' जैसे हाथी दलदल में एक बार चला गया तो ज्यों निकलने की कोशिश करता है, त्यों फँसता जाता है । वैसे ही 'जरा यह कर लूँ... जरा वह कर लूँ... जरा मिल्कियत इकट्ठी कर लूँ... जरा यह ठीक कर लूँ...' ऐसा करते-करते जीव संसार की दलदल में और फँसता जाता है ।

अपने को बेठीक करके तेरा क्या ठीक हुआ ? मृत्यु का एक झटका आयेगा तो सब बेठीक हो जायेगा । मरनेवाले अपने शरीर को कितना भी ठीक करोगे, मौत सब मिट्टी में मिला देगी । मौत सब मिट्टी में मिला के बेठीक करे इसके पहले जहाँ मौत की दाल नहीं गलती उस अपने अमर स्वभाव को **नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा...** कर लो न ! अमर स्वभाव की स्मृति, अनुभव कर लो, फिर शोक नहीं रहेगा, दुःख नहीं रहेगा, मोह नहीं रहेगा, भय नहीं रहेगा, चिंता नहीं रहेगी । आप आनंदित-आह्लादित, मधुमय होंगे, परम सुख में रहेंगे और अपनी दृष्टि और वचन से दूसरों का भी सच्चा सर्वांगीण विकास करने में सक्षम होते जायेंगे । ऐसा आत्मसुख, आत्मलाभ, आत्मज्ञान पा लो भैया ! 'जो छोड़ के मरना है उसके पीछे कब तक मरता रहेगा और जो कभी नहीं मरता

उसका अभाव कब तक मानेगा, उसका अनादर कब तक करेगा ?'- अपने मन को ऐसे समझायें तो पतनोन्मुखी विचार दूर हो जायेंगे। जहाँ आपको पहुँचना है उसी प्रकार के विचार करें ।

(६) दूसरों के लिए हित की भावना और अपने लिए मितव्यय । अपने लिए ज्यादा ऐश नहीं । अपने लिए ज्यादा खर्च न करें और लोगों के हित का व्यवहार करें । हित, मित और प्रिय वाणी आपके हृदय को उन्नत बना देगी ।

(७) संतुलित मनोरंजन । मनोरंजन हो, विनोद हो लेकिन वह भी संतुलित हो, नियंत्रित हो । मनोरंजन की सीमा हो ।

(८) आत्मसाक्षात्कार के लिए अमिट उत्साह । जब तक परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ, तब तक आत्मा-परमात्मा को पाने का उत्साह बना रहे। 'अभी क्यों नहीं हो रहा है ? कैसे पाऊँ प्रभु को ?' इस तरह उत्साह से लगे रहें ।

ये आठ सद्गुण अपने हृदय में भर लें तो आपका प्रभाव खूब ही हो जायेगा। जिसके जीवन में ये सद्गुण आ गये वह तो धन्य हो गया, उसका कुटुम्ब भी धन्य हो गया और उससे मिलनेवाले भी धनभागी हो जाते हैं । राजे-महाराजे आपके आगे मत्था टेककर अपना भाग्य बना लेंगे, ऐसी शक्ति आपके अंदर पड़ी है । आप चले जायेंगे फिर भी खूब लोग आपके नाम की मनौतियाँ मानेंगे, जैसे - नानकजी, लीलाशाह बापूजी आदि संतों के नाम की मनौतियाँ मानते हैं । ये आठ सद्गुण आ गये तो आपको तो ईश्वर मिल जायेंगे, साथ ही आपके पदचिह्नों पर हजारों-लाखों लोग चलेंगे । और इन सब सद्गुणों को साकार करने में स्थलबस्ति, जो आपको दीक्षा के समय सिखायी जाती है, वह चार चाँद लगायेगी और आसान कर देगी । आरोग्य और प्रभावशाली व्यक्तित्व में, निर्विकारिता में और ईश्वरप्राप्ति में बेजोड़ सहयोग कर देगी । ❐

ओजवान-तेजवान बनने का प्रयोग

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

जितने तुलसी के बीज हों उससे साढ़े तीन गुना गुड़ ले लो। मान लो सौ ग्राम तुलसी के बीज हैं तो साढ़े तीन सौ ग्राम गुड़ ले लो ।

तुलसी के बीजों को मिक्सी में पीस लो और फिर उस पाउडर में गुड़ की चाशनी मिलाकर मटर के दानों के बराबर गोलियाँ बना लो। बड़े लोगों के लिए बड़ी गोली, छोटे बच्चों के लिए छोटी गोली। २-२ गोली सुबह-शाम लेनेवाले विद्यार्थी की यादशक्ति तो बढ़ेगी, साथ-ही-साथ वह वीर्यवान, ओजवान, तेजवान एवं बुद्धिमान बनेगा । डरपोक में भी बल आ जायेगा । इसके प्रयोग से कई बीमारियाँ भाग जाती हैं, जैसे पानी पड़ना, स्वप्नदोष, कमजोरी, चमड़ी के रोग, पेट की खराबियाँ, गैस, एसिडिटी, घुटनों का दर्द, ट्यूमर, कैंसर आदि। इससे बहुत फायदा होता है । तुलसी में ८०० बीमारियों को दूर करने की शक्ति है, उसके बीज तो और भी शक्तिशाली होते हैं ।

शास्त्रों में तो यहाँ तक लिखा है कि ये गोलियाँ यदि कोई नपुंसकता से ग्रस्त व्यक्ति भी खाये तो उसमें भी मर्दानगी आ जायेगी, तो पुरुषों और महिलाओं की तो बात ही क्या ! तुलसी के बीज सभीके लिए लाभप्रद हैं । गर्मियों में यह प्रयोग बंद कर देना या कम कर देना । ये गोलियाँ पानी से भी ले सकते हैं। ❐

गैस मिटाये-ताकत लाये : काजू

अगर पेट में गैस बनती है तो काजू को तल दो और उसमें काली मिर्च तथा नमक मिलाकर रख दो । २-४ काजू चबाकर खाने से गैस की तकलीफ में आराम मिलेगा ।

शिशिर ऋतु में विशेष लाभदायी : तिल

(शिशिर ऋतु : २१ दिसम्बर से १७ फरवरी तक)

शिशिर ऋतु में वातावरण में शीतलता व रुक्षता बढ़ जाती है। आगे आनेवाली वसंत व ग्रीष्म ऋतुओं में यह रुक्षता क्रमशः तीव्र व तीव्रतम हो जाती है। यह सूर्य के उत्तरायण का काल है। इसमें शरीर का बल धीरे-धीरे घटता जाता है।

तिल अपनी स्निग्धता से शरीर के सभी अवयवों को मुलायम रखता है, शरीर को गर्मी व बल प्रदान करता है। अतः भारतीय संस्कृति में उत्तरायण के पर्व पर तिल के सेवन का विधान है।

तिल सभी अंग-प्रत्यंगों विशेषतः अस्थि, संधि, त्वचा, केश व दाँतों को मजबूत बनाता है। यह मेध्य अर्थात् बुद्धिवर्धक भी है। सफेद, लाल व काले इन तीन प्रकार के तिलों में काले तिल वीर्यवर्धक व सर्वोत्तम हैं। सभी प्रकार के तेलों में काले तिल का तेल श्रेष्ठ है। यह उत्तम वायुशामक है। इससे की गयी मालिश मजबूती व स्फूर्ति लाती है। शिशिर ऋतु में मालिश विशेष लाभदायी है।

तिल में कैल्शियम व विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। **बादाम की अपेक्षा तिल में छः गुना से भी अधिक कैल्शियम है।** यह हड्डियों को मजबूत बनाता है। तिल के छिलकों में निहित ऑक्जेलिक एसिड इस कैल्शियम के अवशोषण (absorption) में बाधा उत्पन्न करता है। अतः छिलके हटाकर तिल का उपयोग करने से लाभ अधिक होते हैं। तिल को रात भर दूध में भिगोकर सुबह रगड़ने से छिलके उतर जाते हैं। फिर धोकर छाया में सुखाकर रखें। इसे आयुर्वेद ने 'लुंचित तिल' कहा है। लुंचित तिल पचने में हलके होते हैं, अधिक गर्मी भी नहीं करते।

श्रेष्ठ आयुर्वेदाचार्यों श्री चरक, वाग्भट, चक्रदत्त आदि के द्वारा निर्दिष्ट तिल के प्रयोग :

१. काले तिल चबाकर खाने व शीतल जल पीने से शरीर की पर्याप्त पुष्टि हो जाती है। दाँत मृत्युपर्यंत दृढ़ बने रहते हैं।

२. एक भाग सोंठ चूर्ण में दस भाग तिल का चूर्ण मिलाकर ५ से १० ग्राम मिश्रण सुबह-शाम लेने से जोड़ों के दर्द में राहत मिलती है।

३. तिल का तेल पीने से अति स्थूल (मोटे) व्यक्तियों का वजन घटने लगता है व कृश (पतले) व्यक्तियों का वजन बढ़ने लगता है। यह कार्य तेल के द्वारा सप्तधातुओं के प्राकृत निर्माण से होता है।

तैलपान-विधि : सुबह २० से ५० मि.ली. गुनगुना तेल पीकर गुनगुना पानी पियें। बाद में जब तक खुलकर भूख न लगे तब तक कुछ न खायें।

४. अत्यंत प्यास लगती हो तो तिल की खली को सिरके में पीसकर समग्र शरीर पर लेप करें।

५. वार्धक्यजन्य हड्डियों की कमजोरी व उससे होनेवाले दर्द में दर्दवाले स्थान पर १५ मिनट तक तिल के गुनगुने तेल की धारा करें।

६. पैर में फटने या सूई चुभने जैसी पीड़ा हो तो तिल के तेल से मालिश कर रात को गर्म पानी से सेंक करें।

७. पेट में वायु के कारण दर्द हो रहा हो तो तिल को पीसकर, गोला बनाकर पेट पर घुमायें।

८. वातजनित रोगों में तिल में पुराना गुड़ मिलाकर खायें।

९. एक भाग गोखरू चूर्ण में दस भाग तिल का चूर्ण मिलाके ५ से १० ग्राम मिश्रण बकरी के दूध में उबालकर, मिश्री मिलाके पीने से षंढ़ता/नपुंसकता (impotency) नष्ट होती है।

१०. काले तिल के चूर्ण में मक्खन मिलाकर खाने से रक्तार्श (खूनी बवासीर) नष्ट हो जाती है।

तिल की मात्रा : १० से २५ ग्राम।

विशेष : ❊ देश, काल, ऋतु, प्रकृति, आयु आदि के अनुसार मात्रा बदलती है। ❊ उष्ण प्रकृति के व्यक्ति, गर्भिणी स्त्रियाँ तिल का सेवन अल्प मात्रा में करें। अधिक मासिक-स्राव में तिल न खायें। ❐

१० दिन की सेवा, १० साल का मेवा

विश्ववंदनीय मेरी पूज्य गुरुमाऊली के चरणकमलों में सादर, सप्रेम नमन !

मैं प्राइवेट स्कूल में शिक्षक था । मेरा वेतन मात्र २५०० रुपये था। घर का खर्च बड़ी परेशानी से चलता था । मेरी पत्नी ने **'ऋषि प्रसाद'** में कई अनुभव पढ़े थे कि **'ऋषि प्रसाद'** की सेवा करने से बड़े-बड़े संकट दूर हो जाते हैं । पूज्य बापूजी ने एक बार स्वयं अपने श्रीमुख से कहा था कि :

ऋषि प्रसाद के दैवी कार्य में,
जो साधक लग जाते हैं ।
होती उनकी सदा दिवाली,
दुःख के पहाड़ हट जाते हैं ।

मेरी पत्नी ने अपने छोटे बच्चे को गोद में लिया और कुछ बहनों के साथ घर-घर जाकर लगातार १० दिन तक **'ऋषि प्रसाद'** का अभियान किया। १० दिन में उसने ३५० सदस्य बनाये।

गुरुपूनम-दर्शन के निमित्त हम आलंदी (पूना) गये थे। जब लौटे तो दरवाजे पर ही मेरा प्रमोशन लेटर मिला । २५-७-२०१० को गुरुपूनम के दिन ही मेरा इंटरव्यू हुआ और उसी समय चयन हो गया। आज मैं कोपरगाँव कॉलेज में प्रोफेसर हूँ और मेरा वेतन २५,००० रुपये हो गया है।

रक्षाबंधन पर मेरी पत्नी मायके गयी थी। रात को चोर ताला तोड़कर घर में घुस गये और अलमारी खोलकर देखी। सब सामान बाहर फेंक दिया मगर उनको न सोना मिला, न पैसा जबकि ऊपर ही बैग में आभूषण, कीमती साड़ियाँ और कम्प्यूटर आदि लगभग डेढ़ लाख रुपये का सामान रखा था।

सुखी जीवन के इच्छुक सभी भाइयों से मेरा हाथ जोड़कर निवेदन है कि वे **'ऋषि प्रसाद'** के दैवी कार्य में लग जायें, जिससे उनका भी जीवन खुशियों से भर जाय और सबका मंगल हो। **कर भला सो हो भला ।**

मैं स्वयं **'ऋषि प्रसाद'** का सेवाधारी हूँ। मैंने और मेरी पत्नी ने २७०० सदस्य बनाने का संकल्प लिया है।

– मदन महादेव मुंडे
कोपरगाँव, जि. अहमदनगर (महा.).
मो. : ९४२२२८१५६२.

घर-घर अलख जगाओ, दुनिया में उजियारा लाओ

१८ अक्टूबर २०१० की बात है। मेरी बेटी वर्षा को प्रसूति की पीड़ा हो रही थी। स्थिति बड़ी गम्भीर हो गयी थी। उसे दमन (गुज.) के सरकारी अस्पताल में भर्ती कराया। डॉक्टरों ने कहा कि 'बिना ऑपरेशन डिलीवरी नहीं हो सकती । ऑपरेशन कराना ही पड़ेगा ।' इसके लिए तीन विशेषज्ञों को बुलाया गया। मैंने उसी समय अपने गुरुदेव से मन-ही-मन प्रार्थना की और लाखों-करोड़ों लोगों को स्वस्थ, सुखी और सम्मानित जीवन की राह दिखानेवाली, पूज्य बापूजी का सत्संग-अमृत छलकानेवाली आध्यात्मिक मासिक पत्रिका **'ऋषि प्रसाद'** के १०८ सदस्य बनाकर उन्हें सत्संग से जोड़ने का संकल्प लिया। संकल्प करने के कुछ ही मिनटों बाद मेरी बेटी को प्राकृतिक ढंग से सहज में प्रसूति हो गयी । अभी माँ और उसकी बच्ची दोनों स्वस्थ हैं। तीनों विशेषज्ञ जब तक पहुँचे, तब तक तो प्रसूति हो चुकी थी । वे डॉक्टर पूज्य बापूजी की कृपा व **'ऋषि प्रसाद'**

की सेवा के चमत्कार को देखकर आश्चर्य से भर गये और मेरा हृदय भर गया गुरुप्रेम व श्रद्धा से ।

– रमण वाडवी
कलई, जि. वलसाड़ (गुज.).
मो. : ०९६८७४४३३२७.

सेवा के संकल्पमात्र से अद्भुत लाभ

पूज्यश्री के श्रीचरणों में शत-शत प्रणाम !

मेरी पुत्री अनुराधा की तबीयत ४-५ साल से खराब थी । उसे पूरे शरीर में दर्द रहता था और चलने-फिरने में लाचार थी । बहुत इलाज कराया लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ । फरवरी २०१० को मैंने संकल्प लिया कि मैं १०८ **'ऋषि प्रसाद'** भक्तों में निःशुल्क वितरित करूँगा । जुलाई २०१० में १०८ का संकल्प पूरा हुआ और ६ माह पूरे होने के पूर्व ही मेरी पुत्री एकदम ठीक हो गयी ।

यह हमारे पूज्य गुरुदेव की करुणा-कृपा का ही चमत्कार है । 'गुरुसेवा परम सौभाग्य की जननी है ।'- यह अक्षरशः सत्य है ।

– संतोष श्रीवास्तव, रीवा (म.प्र.).
मो. : ९२००६४२२५६. ❐
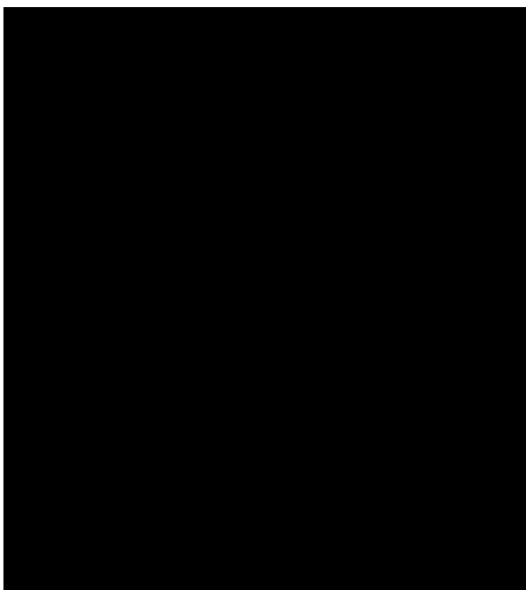
संस्मरणीय उद्गार

पुण्योदय पर संत-समागम

''जीवन की दौड़धूप से क्या मिलता है यह हम सब जानते हैं । फिर भी भौतिकवादी संसार में हम उसे छोड़ नहीं पाते । संत श्री आसारामजी जैसे दिव्य शक्तिसम्पन्न संत पधारें और हमको आध्यात्मिक शांति का पान कराकर जीवन की अंधी दौड़ से छुड़ायें, ऐसे प्रसंग कभी-कभी ही प्राप्त होते हैं । ये पूजनीय संतश्री संसार में रहते हुए भी पूर्णतः विश्वकल्याण के लिए चिंतन करते हैं, कार्य करते हैं । लोगों को आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करने की कलाएँ और योगसाधना की युक्तियाँ बताते हैं ।

आज उनके समक्ष थोड़ी ही देर बैठने से एवं सत्संग सुनने से हम लोग और सब भूल गये हैं तथा भीतर शांति व आनंद का अनुभव कर रहे हैं । ऐसे संतों के दरबार में पहुँचना पुण्योदय का फल है । उन्हें सुनकर हमको लगता है कि प्रतिदिन हमें ऐसे सत्संग के लिए कुछ समय अवश्य निकालना चाहिए । पूज्य बापूजी जैसे महान संत व महापुरुष के सामने मैं अधिक क्या कहूँ ? चाहे कुछ भी कहूँ, वह सब सूर्य के सामने चिराग दिखाने जैसा है ।''

– श्री मोतीलाल वोरा, अखिल भारतीय काँग्रेस कोषाध्यक्ष, पूर्व मुख्यमंत्री (म.प्र.), पूर्व राज्यपाल (उ.प्र.)।

सत्य का मार्ग कभी न छूटे ऐसा आशीर्वाद दो

''हमें आपके मार्गदर्शन की जरूरत है, वह सतत मिलता रहे । आपने हमारे कंधों पर जो जवाबदारी दी है उसे हम भलीप्रकार निभायें । बुरे मार्ग पर न जायें, सत्य के मार्ग पर चलें । लोगों की अच्छे ढंग से सेवा करें । संस्कृति की सेवा करें । सत्य का मार्ग कभी न छूटे, ऐसा आशीर्वाद दीजिये ।''

– श्री उद्धव ठाकरे
कार्यकारी अध्यक्ष, शिवसेना । ❐

संस्था समाचार

(‘ऋषि प्रसाद’ प्रतिनिधि)

२३ नवम्बर से ३ दिसम्बर तक पूज्यश्री **रजोकरी आश्रम (दिल्ली)** में रहे । एकांतवास के दौरान भी स्थानीय एवं देश-विदेश की जनता को प्रत्यक्ष एवं इंटरनेट द्वारा सजीव प्रसारण के माध्यम से सत्संग-ज्ञानामृत का पान कराते रहे । एक तरफ दिल्ली का आपाधापी भरा माहौल तो दूसरी तरफ इस ऋषि आश्रम में बहती सत्संग की मंद-मंद, शीतल बयार ! शब्दों के द्वारा निःशब्द ‘मैं’ की तरफ ले जाते हुए बापूजी कह रहे थे :

‘‘जो अपने असली ‘मैं’ को जानता है, वह सारे विश्व को अपना स्वरूप जानता है । ऐसे ब्रह्मज्ञानी के आगे भगवान भी चेले हो जाते हैं । वसिष्ठजी ऐसे थे तो रामजी चेले हो गये । सांदीपनि ऐसे थे तो श्रीकृष्ण चेले हो गये । श्रीकृष्ण ऐसे हुए तो अर्जुन चेला हो गया । रमण महर्षि थे तो उनके चरणों में मोरारजी भाई देसाई और आनंदमयी माँ थीं तो इंदिरा गांधी और पंडित नेहरू उनके चरणों में नतमस्तक हो के अपना भाग्य बनाते थे । ऐसी है इस असली ‘मैं’ की महिमा ! असली ‘मैं’ का किसीसे विरोध नहीं । सबका असली ‘मैं’ शुद्ध है । नकली ‘मैं’ में झगड़ा है ।’’

३ दिसम्बर को **भिवानी (हरि.)** में सत्संग घोषित हुआ था लेकिन रजोकरी आश्रम से भिवानी के लिए पूज्य बापूजी ने प्रस्थान किया तो रास्ते में **बहादुरगढ़ व रोहतक (हरि.)** के भक्त-समुदाय के आग्रह, अनुनय के चलते बहादुरगढ़ और रोहतक में भी सत्संग-प्रसाद बँटा । पूज्य बापूजी शाम को भिवानी पहुँचे तो वहाँ भी साधक-भक्तों की भीड़ ने आश्रम के पण्डाल को व्याप रखा था । भक्तों ने अपने प्यारे गुरुदेव को बग्घी में बिठाकर स्वागत किया और ढोल, बाजे बजाते हुए व्यासपीठ पर ले गये । हम तो हमारी बुद्धि के अनुसार ही संतों का स्वागत-सत्कार करते हैं, लेकिन संत और गुरुदेव हमारी बुद्धि में बुद्धिदाता का रस, आनंद प्रकट हो, स्वयं बुद्धिदाता बेपर्दा हो जाय, ऐसा सत्संग सुनाते हैं । भिवानी की जनता ने भी अपनी मति-गति से पूज्यश्री का स्वागत किया तो बापूजी ने भी ऊँचे-में-ऊँचा आत्मज्ञान सत्संग में बाँटते हुए कहा : ‘‘आपकी बुद्धि भगवान में लगेगी तो बढ़िया हो जायेगी । चिंता में बुद्धि लगने से तबीयत खराब हो जाती है । स्त्री-पुरुषों में बुद्धि लगने से काम-विकार होता है । संसार में लगने से बुद्धि लड़खड़ाने लगती है । भगवान में बुद्धि लगने से भगवान का ज्ञान हो जाता है । बहुत बड़ा फायदा है । बुद्धि जितनी ऊँची चीज में लगती है उतना कम परिश्रम और ऊँचा फायदा होता है । दुःख से भागना नहीं है और दुःखी होकर गिरना नहीं है, केवल दुःख के सिर पर पैर रखनेवाली बुद्धि बनाना है । सुख से भागना नहीं है, सुखभोगी होकर ठुस्स नहीं होना है, केवल सुख का बुद्धिपूर्वक उपयोग करके परम सुखस्वरूप को सदा के लिए पा लेना है ।’’

४ व ५ दिसम्बर, चिड़ावा, जि. झुन्झुनू (राज.) में सत्संग हुआ । यहाँ की जनता को भगवन्नाम और गुरुमंत्र की अपार महिमा से पूज्यश्री ने अवगत कराया । शास्त्रों में भगवन्नाम की महिमा गायी गयी है पर बापूजी के श्रीमुख से सर्वसामान्य जनता सहज रीति से समझ सके, आत्मसात् कर सके ऐसी सर्वसुलभ शैली से भगवन्नाम और गुरुमंत्र की महिमा कुछ इस तरह मुखर हुई : ‘‘आपके अंदर भगवन्नाम लेने की कला हो, भगवन्नाम में विश्वास हो तो आप अपने को बड़ा धनवान मानिये, बड़ा सुखी मानिये । जिसके जीवन में गुरुमंत्र की, भगवन्नाम की बरकत नहीं है, केवल पैसे होने से वह आदमी इतना सुखी नहीं होता । रावण के पास सोने की लंका थी और शबरी भीलन के पास टूटी खाट भी नहीं थी । पर शबरी भीलन को मतंग ऋषि का मंत्र मिल गया था, जिससे उसे आत्मशांति मिली, आत्मज्ञान मिला, आत्मवैभव मिला । श्रीरामचन्द्रजी शबरी के जूठे बेर खा रहे हैं और रावण को तीरों का निशाना बनाया !’

५ व ६ दिसम्बर, सीकर (राज.) में सत्संग हुआ । सीकर की जनता को भी गुरुमंत्र के लाभ से अवगत कराते हुए बापूजी ने कहा : ‘‘शब्द में अद्भुत शक्ति है और वह शब्द अगर मंत्र है तो उसका प्रभाव और बढ़ जाता है । ऐहिक शब्द, ऐहिक दुनिया तक ही महदूद (सीमित) रहता है लेकिन मंत्र दैविक जगत में भी गति करता है और मंत्र में भी अगर

भगवान का नाम है तो ऐहिक जगत, दैविक जगत के पार ईश्वरीय जगत के साथ भी संबंध जोड़ देता है। तीनों जगतों में उसका असर पड़ता है।''

६ दिसम्बर दोपहर को **कुचामन**वासी भी सत्संग से लाभान्वित हुए। भगवद्रस, भगवद्भक्ति ही सारी समस्याओं का निराकरण करनेवाले हैं। पारलौकिक सुख की तो बात ही क्या, यहीं लौकिक जीवन में भी शरीर-स्वास्थ्य पर इसके प्रभाव की बात बताते हुए बापूजी ने कहा : ''तैत्तिरीय उपनिषद् में आया है : **रसो वै सः ।** भगवान रसस्वरूप हैं, इसलिए भगवान से उत्पन्न हर जीव रस चाहता है। जिसको शाश्वत रस मिलता है उसका स्वास्थ्य भी बढ़िया हो जाता है। और लोग टॉनिकों से स्वास्थ्य-लाभ लेते हैं लेकिन उसे आत्मरस से, भक्ति से, परोपकार से स्वास्थ्य-लाभ होता है। अभी विज्ञानी स्वीकार करते हैं कि 'हार्ट-अटैक की दवा जो मरीजों को दी जाती है उसमें एस्पिरिन होता है, लेकिन केवल परोपकार करनेमात्र से उससे पाँच गुना अधिक एस्पिरिन शरीर में बनता है, तो भगवद्भक्ति से, भगवद्रस से कितना लाभ होता होगा ! यह विज्ञानियों की समझ से बाहर है।''

६ से १२ दिसम्बर तक पूज्य बापूजी **पुष्कर, डुंगरिया आश्रम** में एकांतवास में रहे और यहाँ के अनुष्ठानार्थियों को पूज्यश्री के सत्संग-सान्निध्य का अवसर मिला और आत्मयात्रा का पथ प्रशस्त हुआ। यहाँ के एकांतवास के सत्संगों के दौरान जिज्ञासु साधकों को सम्बोधित करते हुए पूज्यश्री बोले :

''भगवान ने बुद्धि दी है तो अपना और दूसरे का दुःख, अज्ञान मिटाने में लगाओ। अपना अहं मिटाकर परमात्मा के 'मैं' के साथ जुड़ने की कला सीख लो। तुम्हारे ज्ञान से भगवान का ज्ञान बड़ा है, तुम्हारे सुख से भगवान का सुख बड़ा है, तुम्हारी समझ से भगवान की समझ बड़ी है, तुम्हारी सत्ता से भगवान की सत्ता बड़ी है। तो आप अपनी थोड़ी-सी सत्ता, थोड़ा-सा ज्ञान, थोड़ा-सा जो सुख है, थोड़ा-सा नन्हा 'मैं' है, वह ईश्वर के 'मैं' में मिलाने की कला सीख लो।''

१२ दिसम्बर रविवारी सप्तमी के निमित्त जप-साधना हेतु बड़ी संख्या में साधक पुष्कर आश्रम में एकत्रित हुए तो बापूजी ने भी एकांतवास से निकलकर उनको अपना पावन सान्निध्य प्रदान किया और वहाँ की महफिल ॐकार-कीर्तन से गूँज गयी।

१५ दिसम्बर को पूज्यश्री का **भीलवाड़ा (राज.) आश्रम** में आगमन हुआ। भीलवाड़ावासियों के इस बार भाग्य खुल गये जो १६ तारीख के सत्संग-कार्यक्रम के पहले चार दिन का दर्शन-सान्निध्य उन्हें मिला। जीवन जीने की कला सिखाते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''सुख-दुःख, लाभ-हानि, उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय, यह सब तो लीलाधर की लीला-ही-लीला है। उसकी लीला में दुःख नहीं है, हमारी ममता से हमको दुःख होता है। दुनिया में अभी कितने लोग मरते होंगे, हमको दुःख नहीं होता लेकिन मेरापन जिसमें है उसे कुछ होता है तो दुःख होता है। कई मकान गिरे हैं तो कोई दुःख नहीं है लेकिन मेरा मकान गिरा तो दुःख होता है। परेशानी ममता- अहंता में है। ईश्वर की सृष्टि में परेशानी नहीं है, लीला है, हमारी ममता में परेशानी है। हम अड़ जाते हैं, 'ऐसा क्यों हुआ ?' उसकी 'हाँ' में 'हाँ' भर दो तो बहुत शीघ्र उसका प्रागट्य हो जाता है। हम हमारी 'हाँ' में उसकी 'हाँ' करवाना चाहते हैं, इसीलिए गड़बड़ है।''

१६ तारीख को भीलवाड़ा के बाद छोटे-से गाँव **रायपुर** में सत्संग हुआ तो ऐसा लग रहा था कि मानो सारा गाँव ही बापूजी के दर्शनार्थ उमड़ पड़ा हो। रायपुर जैसे छोटे-से गाँव में बापूजी के आगमन से गाँववासी व आसपास के इलाके से आये श्रद्धालु गद्गद हुए। सत्संग-सरिता के इस बहते प्रवाह में **१७ दिसम्बर** को **जैतारण और ब्यावरवासी** भी पावन, पुनीत और आनंदित हुए। 'गीता जयंती' के उपलक्ष्य में 'श्रीमद् भगवद्गीता' की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए पूज्यश्री बोले : ''गीता में ७०० श्लोक हैं। उनमें से कोई एक श्लोक अपने जीवन में ले आओ तो बीते हुए का शोक चला जायेगा, भविष्य का भय चला जायेगा, वर्तमान की बेवकूफी और कायरता चली जायेगी। भगवान दूर हैं, दुर्लभ हैं, परे हैं, पराये हैं यह पागलपन मिट जायेगा। जिसकी सत्ता से आँखें देखती हैं, जिसकी सत्ता से कान सुनते हैं, जिसकी सत्ता से मन सोचता है, बुद्धि निर्णय करती है और सब बदल जाता है फिर भी जो नहीं बदलता है, वह कितना दूर है, बोलो ? दूर है क्या !''

१८ से २० दिसम्बर, किशनगढ़, जि. अजमेर (राज.) में पूर्णिमा-दर्शन व सत्संग महोत्सव सम्पन्न हुआ । किशनगढ़ के इतिहास में अभूतपूर्व रहे इस आयोजन में देश के अनेक राज्यों, खासकर उत्तर भारत और राजस्थान से आये पूनम-व्रतधारी और भक्तों की विशाल जनमेदनी उमड़ पड़ी थी। भगवान श्रीकृष्ण के गीताज्ञान को सुलभ बना के जनसामान्य तक पहुँचाते हुए बापूजी ने गीता की आत्मविद्या पर प्रकाश डाला । बापूजी बोले : ''श्रीकृष्ण की गीता का ज्ञान कैसा है ? **पवित्रमिदमुत्तमम् ।** पवित्र तो गंगाजल भी होता है लेकिन बारिश के दिनों में उत्तम नहीं होता है । मटमैला, गँदला हो जाता है। नहानेवाले भी मुकर जाते हैं, गंगाजल से छींटा मारकर नल के पानी से नहा लेते हैं। लेकिन यह वह विद्या है जो पवित्र भी है, उत्तम भी है। प्रत्यक्ष फल देनेवाली वस्तु धर्म पर पर्दा डालती है लेकिन यह विद्या धर्म पर पर्दा नहीं डालती । धर्म के फल को भी प्रगट कर देती है और पर्दा हटा देती है। यह ऐसी विद्या है कि दुःखों से छुड़ा देगी। इस विद्या का जितना आदर करो, उतना कम है लेकिन अभागे लोग इसका आदर नहीं करते और भटकते रहते हैं।''

२० से २२ दिसम्बर तक रायता आश्रम, उल्हासनगर (महा.) में पूनम दर्शनार्थियों को पूनम-दर्शन का अवसर प्राप्त हुआ। तीनों दिन रायता आश्रम में जनसागर उमड़ता रहा। आते-जाते दर्शनार्थियों की कतारें देख ऐसा प्रतीत होता था मानो, कुम्भ का मेला साकार हुआ हो। तीनों दिन के इस सत्संग में महाराष्ट्र सहित देश भर के लाखों-लाखों लोग दर्शन-सत्संग से लाभान्वित हुए । लाखों-करोड़ों साधकों के दीक्षा से होनेवाले जीवन-परिवर्तन के अनुभव को उजागर करते हुए बापूजी ने कहा : ''जब दीक्षा मिलती है तो आदमी की दिशा ऊँची हो जाती है, सुख चिन्मय हो जाता है, बुद्धि चिन्मय हो जाती है, मन निष्कपट-निष्काम हो जाता है । जैसे पारस लोहे की पुतली को लगा तो पुतली तो वही-की-वही रही लेकिन लोहे का जंग चला गया, लोहा सोना बन गया, कीमत बदल गयी क्योंकि पारस का स्पर्श हुआ । ऐसे ही दीक्षा मिली, साधना के पारस का स्पर्श हुआ तो शरीर तो वही दिखेगा लेकिन '**आसुमल से हो गये साँईं आसाराम ।**' ऐसे ही 'संसारी' से हो जाते हैं 'बापू के साधक' । पहले जो दुःख होता था, अब उतना नहीं होता है । पहले जितनी चिंता होती थी, अब उतनी नहीं होती है। पहले जितनी बीमारियाँ पकड़ती थीं, साधक बनने के बाद अब उतनी नहीं पकड़ती हैं। अभी तो मेरे शिष्यों की यात्रा शुरु हुई है, आगे चलकर तो राजा जनक, शिवाजी और राजा निर्मोही को जो आत्मरस मिला वह मेरे साधकों को इस मार्ग में मिलता रहता है ।''

२३ दिसम्बर (दोपहर) के एक सत्र के सत्संग का सौभाग्य **बोईसर, जि. थाने (महा.)** वासियों को प्राप्त हुआ ।

२४ से २६ दिसम्बर, सूरत (गुज.) में हुए 'ध्यानयोग शिविर' में ध्यान, प्रार्थना, सुमिरन की रसधार बही और शिविरार्थी भावगंगा में, ज्ञानगंगा में गोते लगाकर धन्य-धन्य होते चले गये। भगवत्सुमिरन की महिमा पर प्रकाश डालते हुए पूज्यश्री बोले : ''जिनके सुमिरनमात्र से संसार-बंधन से आदमी छूट जाता है वे तो भगवान ही हैं, बाकी तो काम लेंगे तब कुछ देंगे। भगवान का केवल सुमिरन करो तो बल भी देंगे, बुद्धि भी देंगे, यश भी देंगे और 'बापू-बापू-बापू' करके सब कुछ करवा देते हैं। अगर सुमिरनमात्र से कोई संतुष्ट और प्रसन्न होकर हमारे में दिव्य ज्ञान का संचार करते हैं तो वे भगवान हैं। लवर-लवरी (प्रेमी-प्रेमिका) का चिंतन-सुमिरन करेंगे तो वे काम-विकार देंगे। किसी नेता का सुमिरन करेंगे तो उल्लू बनायेगा लेकिन भगवान का सुमिरन करेंगे तो उल्लूपना जायेगा और भगवद्रस आयेगा, भगवद्ज्ञान आयेगा।'' ❐